TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182561
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.08 V65P Accession No. P.G.H 3580

Author विद्यानन्दन 'राजीव'

Title पथ के गीत

This book should be returned on or before the date last marked below.

पथ के गीत

रचयिता—

* विश्वानन्दन 'राजीव'
* दिनेशचन्द्र पाण्डेय
* मुकुटबिहारी त्रिपाठी
* रामदत्त शर्मा
* भँवर श्रीमाली
* राजबहादुर 'पद्म'

प्रकाशक—
साहित्य कला परिषद्
भिण्ड

Checked 1969

१९५६
(सर्वाधिकार सुरक्षित)
मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
ओमप्रकाश मिश्र
नवयुग प्रेस, लश्कर.

दो शब्द

भोर होती है कलियाँ अँगड़ाई लेकर हंस पड़ती है, भौंरे गुन-गुना उठते हैं, शत-शत नीड़ों से गान फूट पड़ता है। ये सब क्यो ? इसलिए कि सुबह की हवा हर कण के अन्तस् में सिहरन भर जाती है।

राष्ट्र की इस नव-चेतना की वेला में हर कली का, हर भौंरे का और हर पंछी का हँसना, गुनगुनाना और गाना स्वाभाविक है। क्यो ? इसलिए कि चिरप्रतीक्षित इस अरुणोदय में पवन का हर प्रवाह सभी में स्पन्दन उत्पन्न कर जाता है। आज बगिया का हर बिरवा अपनी सम्पर्ण बहार को सजा कर इस नई वेला में नया आलोक बिखेरने को आतुर है। हर एक की अपनी आभा है, अपना रूप है और अपना रंग है। इसीसे तो चमन में चेतना है, आकर्षण है और हर एक को लुभाने वाला आमोद है।

प्रस्तुत काव्य संकलन में कुछ ऐसे ही बिरवों के उच्छ्वास है। विश्वास है कि ये भी नवयुग के प्रभात में राष्ट्र की बगिया के हर कण में चेतना के स्वर भरने में समर्थ होंगे।

आज साहित्यजगत में इधर उधर कुछ सामूहिक प्रकाशन के प्रयास दिखाई दे रहे हैं। ऐसे प्रयत्नों का अपना मूल्य है। हर वस्तु का अर्थ और उपयोगिता से मूल्य आँकने वाले इस समाज में साहित्य को अपनाने के विषय में एक स्पष्ट उदासीनता परिलक्षित होती है।

परिणामस्वरूप कतिपय गिने-चुने पौधों को छोड़कर, अधिकांश अंकुरों को पनपने के अवसर बहुत सीमित हैं। आवश्यकता है इस बात की कि हर अंकुर को विकास का अवसर मिले जिससे कि राष्ट्रभाषा की वाटिका का कोना कोना पल्लवित और पुष्पित हो सके।

कला मानव की उदात्त भावनाओं को जागृत कर उसे पशुता से उठाकर सच्चे मानवत्व की ओर अग्रसर करती है। वैसे कला और साहित्य की अनेक परिभाषाएँ हो सकती हैं, पर तात्विक बात के बारे में से कोई मत-भेद नहीं है। हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत प्रयास इस दिशा में उठाया गया एक साहसिक कदम है।

आशा है स्वतन्त्र भारत का नागरिक समाज व शासन इस प्रयास का स्वागत कर नई प्रतिभाओं को साहित्यसृजन की ओर प्रेरित करेगा।

विद्यानन्दन 'राजीव'

जनपद अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) के अन्तर्गत कठैरा ग्राम मेरा जन्म स्थान है। उक्त नगर के धर्म समाज कालिज में मेरी शिक्षा-दीक्षा हुई, जहां के साहित्यिक वातावरण ने मेरी कवितामयी भावनाओं को प्रोत्साहित किया। लगभग चार वर्ष तक वहाँ की हिन्दी साहित्य परिषद में मुझे विभिन्न पदों पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। श्री रायज़ादा की "विश्व साहित्य" त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादन ने मुझे एक नई दिशा दी और अंग्रेजी आदि भाषाओं की कविताओं के अनुवाद हिन्दी में देने की अभिरुचि उत्पन्न की।

अलीगढ़ से बी० ए०, एल० टी० तक की शिक्षा प्राप्त कर मैंने शिक्षा विभाग मध्यभारत के अन्तर्गत सेवा में प्रवेश किया। लश्कर की आलोकन संस्था के ससर्ग ने भी मेरी कविता के मार्ग मे एक नवीनता प्रदान की। इस समय मैं बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, भिण्ड (मध्यभारत) में प्राध्यापक पद पर कार्य कर रहा हूं।

गीत के प्रति मेरी बड़ी निष्ठा है। वर्त्तमान राजनीति और समाज मेरी रचनाओं के विषय है। अणुयुग की विभीषिकाओं के प्रति सजग होने के लिए मेरी इधर की रचनाओं का संकेत है। रचनाओं मे समाज और विश्व राजनीति को बड़े सरल और निष्पक्ष भाव से चित्रित करने का मेरा प्रयत्न रहता है और जनजागरण उनका उद्देश्य है। प्रकाशन के आरम्भ में मेरी नवीनतम रचनाएं हैं, और अन्त की ओर पिछले समय की कविताएं प्रस्तुत की गई हैं। वैसे तो रचनाएं भी स्वयं परिचय स्वरूप हैं।

अनुक्रमणिका

१. वन्दना ३
२. पतझर ४
३ छोटी छोटी बातों पर ५
४. पूनम की रात ६
५. तुम प्यार करो ८
६. भोर ९
७. उजड़ा चमन ११
८. अर्चना दीप १३
९ सृजन की ओर १४
१० धरती से प्यार १७
११ प्रतिदान न चाहूंगा १९
१२ दो चतुष्पदियां २०
१३ दीप जलाया होता २१
१४ संध्या हो आई २२
१५ रे पथ ! २४
१६ नियति २५
१७ गणतन्त्र दिवस २६
१८ ढूंढो ऐसे इंसान को २८

वन्दना

करो वीणावादिनि, स्वीकार !

मुखरित स्वर-तन्त्री मां, करदो
अभिनव–राग रसाल,
जगती–उर कल-कूजन भरदो
हरलो विघ्न कराल;

जुही की कलियों का उपहार
करो वीणावादिनि, स्वीकार

हरित–पल्लवित तृण–अंकुर को
देदो शक्ति महान,
कानन–कुन्जों में भी भरदो
देश–प्रेम का गान,

सुवासित सुमनों का उपहार
करो वी।णावादिनि स्वीकार

पतझर-गीत

जहां जहां पतझर होता है आती वहीं बहार है,
इसीलिए सूनी डाली से मुझे बहुत ही प्यार है !

झरते है जो फूल वही फिर नई बहारें लायेंगे,
जहां बरसती आग वहां कल बर्षा के दिन आयेंगे,
तूफानों को देख डगर पर रुक जाना मत बावले,
संघर्षों में रहना ही तो जीवन का आधार है।

चाँद बुझा पायेगा क्या जितनी चकोर की प्यास है
लेकिन जलकर भी शलभों का दीपक पर विश्वास है;
अरे पुजारी, दीप जलालो प्राणों में विश्वास का—
चातक का घनश्याम कभी तो बरसाता रसधार है

जहां-जहां पतझर होता है आती वहीं बहार है,
इसीलिए सूनी डाली से मुझे बहुत ही प्यार है।

छोटी छोटी बातों पर....

छोटी-छोटी बातों पर मत बेचो रे, ईमान को!
मत भूलो मन-मन्दिर में बसने वाले भगवान को।

मत समझो कुछ भी अपना इस दुनियां के बाजार में,
अगर किनारा छोड़ोगे बह जाओगे मझधार में;
अपने-अपने पथ के पन्थी कौन किसी का मीत है,
सागर के उठते ज्वारों मे हर नाविक भयभीत है;
अमर बनादो नई सुबह के हर पंछी की तान को!

किसे पता है अभी तुम्हारी मंजिल कितनी दूर है,
अपने-अपने पथ चलने को हर कोई मजबूर है;
इसीलिए तो स्वयं संभालो तुम अपनी पतवार को,
अब तक देखा खूब किनारा अब देखो मझधार को;
ओ माँटी के लाल, न भूलो धरती के अहसान को!
छोटी-छोटी बातों पर मत बेचो रे, ईमान को।

पूनम की रात

पूनम की कितनी रात सुहानी होती है,
लेकिन सारी दुनियां दीवानी सोती है !

बतलाओ तो कितनों ने वे क्षण देखे हैं
जब शुभ्रसुधा धरती पर लेती अंगड़ाई,
झिलमिल गाती है गीत सितारों की टोली
जब कलियों के द्वारे बजती है शहनाई;
वे घड़ियाँ होती हैं कितनी अनमोल कि जब—
हर लहर किनारे के चरणों को धोती है !

लहरों ने नौका को अंचल में उठा लिया
पर बेसुध सोता मांझी तट पर मतवाला,
बिंदिया बिन सूना भाल न निंदिया आपाई
पूजा के दीप संजोती है विरहिन बाला;
कलियां गाती हैं गीत लता शरमाती है
जब रात रुपहले शबनम के कण बोती है।

चाँदनी झरोखों से आती गुमसुम-गुमसुम
रूपसि को लेजाती सपनों के गाँवों में,
पनघट पर छलका करती प्यार भरी गगरी
रस-धार बरसती है फूलों की छाहों में,
किसने देखा है दर्द उनींदे प्राणों का—
जब सपनों की दुनियाँ वीरानी होती है।

फूलों की सेज अभी तक सूनी–सूनी है
परदेशी प्रियतम नहीं लौट कर घर आये,
आबीर बरसता सखियाँ फाग मनाती है
होली की ऋतु कान्हा पिचकारी भरलाए;
चलती है पछवा-हवा देख, पतझर होता–
मधुवन में कोयलिया सिर धुन-धुन रोती है।

पूनम की कितनी रात सुहानी होती है,
लेकिन सारी दुनियाँ दीवानी सोती है !

तुम प्यार करो

तुम प्यार करो सौ बार मुझे जी भरकर,
हर-रोज़ मिलो मुझ को मेरी मंजिल पर;
पर प्राणों को बन्दी न बनाना कोई !

मै तो मतवाला राही अपने पथ का
जग में मेरा कोई आधार नहीं है,
मत रोको रे ! स्वच्छन्द विचर लेने दो
पल भर रुकना मुझको स्वीकार नही हैं;
तुम कोयल की मृदुतान सुनो जीभर कर—
पर पाँखों में बन्धन न लगाना कोई !

यह सच है तुमने दर्द दिया है मुझको
मैंने उसको गीतों में बाँध लिया है,
लेकिन फिर भी मेरे विद्रोही मन ने
संघर्षों में रहना स्वीकार किया है;
तुम प्यार करो इन फूलों से, कलियों से
पर मधुवन में पतझार न लाना कोई !

तुम प्यार करो सौ बार मुझे जीभरकर
पर प्राणों को बन्दी न बनाना कोई !

भोर

सजाले तू अपनी पतवार,
छोड़ दे तट से करना प्यार; भोर हो गया अरे नादान !

उठा प्राची दिशि में आलोक, तिमिर धुल गया, मिटा सब क्लेश,
साँझको जिसने लिया विराम, पथिक बढ़ चला प्रिया के देश;
चहचहा उठे हजारों विहग, नीड़ के स्वर मुखरित हो गए,
उषा का दे स्वर्णिम सन्देश, निशा के सब प्रहरी सो गए;

रात भर सोया पांव पसार,
जगापाया न तुझे संसार, भोर हो गया अरे नादान !

विजन का पंछी भरे उड़ान, खोजता है अम्बर के छोर,
डालियों का करती शृंगार, देख, अमराई चारों ओर;
ग्रीष्म में धरती की जो देह, लगी उड़ने विभूति बन कर
उसी की देख बेबसी घिरे, सजल हो अम्बर में जल धर

प्रगति की ओर बढ़ा संसार,
मिली कण-कण को नई बहार, भोर हो गया अरे नादान !

चन्द साँसों पर ही रुक रहा, देह का यह कमजोर मचान,
उड़ा देने को जिसकी धूल, घेरते आते हैं तूफान;

इसी से ओ मतवाले संभल ! साँस की बागडोर ले थाम,
अरे केवल पल भर में यहाँ, सुबह की हो जाती है शाम,

न रह दुनियाँ में बनकर भार
न कर तन का इतना शृंगार. अरे ओ दो दिन के मेहमान !

सभी के जीवन में बावले, दिवस ऐसे भी आते है,
देख कर तरु की सूनी डाल, पखेरू उड–उड जाते हैं;
कली पर पड़ता जबकि तुषार, न सुनता कोई उसकी पीर,
मगर जब अधर खोलते सुमन, मधुकरी होती मिलन–अधीर;

इसी से कर निज पर विश्वास,
बुलाकर तूफानो को पास, हृदय से करता जा सम्मान !

उजड़ा चमन

मेरे उजड़े हुए चमन को देख—
बावले हंसी उड़ाओ ना,
खुशी के दीप जलाओ ना।

यदि आज हो गई है सूनी डाली तो क्या
लेकिन कल तक तो उस पर कोयल बोली थी,
पी-पी कर प्रिय के लिए पपीहा ने कल तक
कलियों की अंगड़ाई में मदिरा घोली थी,
कल तक तो राधा सी उन्मत्त मयूरी ने
मुखरित होकर अपने घनश्याम बुलाए थे,
कल तक माँगों में भर सिन्दूर लताओं ने
तरु से मिलने को कोमल हाथ बढ़ाए थे,

इससे मेरे आए दुर्दिन को देख—
बावले खुशी मनाओ ना,
नींद से मुझे जगाओ ना

मैं गीतकार हूं गाकर या रोकर
अपने खोये खोये मन को बहला लूंगा.
जब उमड़ उठेगी अरमानों की कालिन्दी,
उसको गीतों के कूलों में उलझालूंगा
आरती उतारूंगा मुरझाते फूलों की
जो झरते हैं फिर नई बहारें लाने को,

मैं चरण चूमलूंगा उस गहन अमावस के
जो लायेगी पूनम अमृत बरसाने को;

इससे मंजिल के कांटों को देख—
अरे पन्थी घबराओ ना !
फूल की याद भुलाओ ना !

मैं नहीं कामना करता इससे फूलों की
अपने शूलों को ही मैं फूल बनालूंगा,
यदि पिकी न अपनायेगी मन के मधुवन को
तो मै उसमें चातक की पीर बसालूंगा;
मैं दर्द भरे स्वर से जब-जब भी गादूंगा
तो लहर भटकती हुई किनारा पायेगी,
जब–जब मेरी अन्तस्-पीड़ा मुखरित होगी
उसको सुनकर बेवसी स्वयं शरमायेगी;

इससे मेरी मन–वीणा को छेड़—
ध्वंस का राग जगाओ ना !
नया तूफान उठाओ ना !

अर्चना-दीप

अर्चना का दीप मेरा बुझ न जाए,
ओ पवन नादान ! तुम इसको न छेड़ो !

जलगई इस ज्योति पर कितनी जवानी,
किन्तु रजनी ने न फिर भी हार मानी,
चलरहा संघर्ष तम में औ' प्रभा में,
युग-युगों से है अधूरी ही कहानी,
प्रगति मेरी कामना की रुक न जाये,
ओ पवन नादान ! तुम इसको न छेड़ो !

एक युग बीता किसी के गीत गाते,
जलगए हैं पोर दीपों को जलाते,
एक आशा ही बनी आधार मेरा,
इसलिए अपने भुलाए भी न जाते;
हम खड़े हैं शूल अन्तर में छिपाए,
ओ पवन नादान ! तुम उसको न छेड़ो !

मूक मेरा स्वर किसी से क्या कहूं मैं ?
किन्तु यह भी कठिन यों ही चुप रहूँ मैं,
ओ प्रवासी प्राण ! इतना तो बतादो !
ये मधुर आघात भी कब तक कहूं मैं ?
साधना का दीप मेरा बुझ न जाए,
ओ पवन नादान ! तुम इसको न छेड़ो !

सृजन की ओर

सूनी डाली पर जिस दिन कोयल बोलेगी
उस दिन आना ही होगा मधुर बहारों को,
मन का माँझी जब तिरने को व्याकुल होगा
मैं तभी उतारूंगा जल में पतवारों को,

है मुझे प्रतीक्षा आजाने दो ज्वार अभी
सूने सागर में तो हर कोई तरता है,
देखूंगा तब है कितनों का उत्साही मन
जो संघर्षों में भी स्वच्छन्द विचरता है!

जब उन्मुख लहरों के अंचल पर पड़ी हुई
हर एक तरी कतरा कर डगमग डोलेगी,
तब देखूंगा इस युग के गाने वालों में
किसकी वीणा 'भूषण' के स्वर में बोलेगी;

मैं इसीलिए कहता हूं बैठ किनारों पर
मझधारों को गा-गाकर मत बदनाम करो,
जिसके द्वारा अपने साहस को तोल सको
जूझो संघर्षों से कुछ ऐसा काम करो;

मैंने देखा है डरने वालों के पथ पर
छोटे झा भी तूफानी बन जाते हैं,
जब धैर्य छोड़ देता राही चलते-चलते,
तो सीधी राहों पर भी पग गढ़ जाते हैं

यदि दर्द देखना है जन-जन के जीवन का
तो मत खोजो केवल उनकी तसबीरों में,
मत ढूंढो अपनी कविता नदी किनारे पर
जो भटक रही है पथ के भग्न कुटीरों में;

तुम ऐसा दर्द जगाओ अपने प्राणों में
जो दर्द दुखी इन्सानों का पहिचान सके,
तुम ऐसी खींचो रेख जिसे उल्लंघन कर
दीनों पर कोई रावण हाथ उठा न सके,

एटम की बाँहों में संस्कृतियाँ बिलख रहीं
सुन सकते हो तो सुनलो चीख पुकारों को,
हर एक सभ्यता भय से थर-थर कांप रही
यदि रोक सको तो रोको अन्याचारों को;

भोले मानव की गोरी-गोरी अर्थी पर
अपने पग डगमग ध्वंस बढ़ाता आता है,
वह लाज लूटने महा-प्रलय का दुर्योधन
धरती-द्रुपदा की साड़ी खींचे जाता है,

क्या हुआ, अगर पूनम लाने से पहिले ही
संसार अमावस की स्याही में डूब गया!
क्या हुआ, कोयलों के जौहर करलेने पर
तुम अपनी बगिया को देपाये रूप नया!

जो पग विनाश की ओर आज बढ़ते जाते
यदि शान्ति-सृजन की ओर नहीं तुमने मोड़े,
जिनके द्वारा संसार बिछड़ता जाता है
यदि देश-देश के वे व्यवधान नहीं तोड़े—

तो ध्यान रहे युग के निर्माता गीतकार
ये नीरस-कृतियाँ अम्बर में उड़ जायेंगी;
यदि युग के साथ न बदला तुमने अपने को
आने वाली पीढ़ी तुम पर पछतायेगी

फिर घास उगेगी नहीं तुम्हारी माटी पर
हर फूल वहां पर खिलने में शरमायेगा;
ऐसी समाधि पर कोयल कभी न बोलेगी
सावन का बादल कभी न घिर कर आयेगा;

तुम करो भगीरथ यत्न लेखनी के सैनिक !
आओ जन के कुत्सित अरमानो को बदलो।
तुम विश्व व्यापिनी प्रीति जगादो प्राणों में
धरती अम्बर बदलो ! इन्सानों को बदलो !!

धरती से प्यार

रे अम्बर, तुम भले रहो मस्तक के ऊपर,
लेकिन मुझ को तो धरती से प्यार बहुत है !
आदि सृष्टि में जिसके उन्नत गिरि शिखरों ने
लहरों पर तैराते मनु को दिया सहारा,
जिसकी पावन रज लपेट कैलाश निवासी
शंकर ने था कठिन मौत को भी ललकारा;
मस्तक पर जिस मां की पुण्य विभूति चढ़ाने
ईश्वर कितनी बार यहां मानव बन आया,
जिसके मोद भरे अंचल पर जन्म बिताने
स्वर्ग निवासी देवों का भी जी ललचाया;
इसीलिए तो प्राणदायिनी वसुन्धरा का
मनु-सन्तति के जीवन पर आभार बहुत है ।
कब तक देंगे ज्योति गगन के नन्हे तारे ?
मुझको तो मांटी का दीप जलाना होगा;
स्वर्गारोही प्रासादों के ठीक सामने
अपना तिनकों का आगार सजाना होगा;
स्वर्ग-सृग्ति के लिए भटकते रहने भरसे
जीवन नौका पा न सकेगी कभी किनारा;
इसीलिए मुझ मर्त्य-निवासी को अतिप्रिय है
दुग्ध-धवल तन्वी गंगा-यमुना की धारा;
नहीं तनिक भी प्यार मुझे नभ के कुसुमों से
मुझको धरती के फूलों का हार बहुत है !

सारी रात चकोरी उड़ती रही गगन में
किन्तु न इस जगती से उसने नाता तोड़ा,
निशिभर देखी क्रूर सुधाकर की निर्ममता
पर प्रभात होते ही धरती को मुख मोड़ा;
उड़ते जाओ दूर अरे उन्मत्त पखेरू
पर निदान तुमको वसुधा पर आना होगा,
पिकी प्रवीणा भरो उड़ानें सारे नभ में
पर बसन्त का गीत धरा पर गाना होगा;
चाह नहीं है स्वर्गारोही प्रासादों की
इस काया को तिनकों का आगार बहुत है !

जिसने पोषण किया सदा वात्सल्य हृदय से
उसे सदा ही मैंने पैरों से ठुकराया,
मेरे अगणित अहित भरे अपराधों पर भी
मेरी मां को कभी तनिक आवेश न आया;
जिस मां के हरियाले धूल भरे वैभव में
मेरे शैशव का सारा इतिहास छिपा है,
जिसके निर्झर सरिताओं के मधुर स्वरों में
मेरे गीतों का अविचल विश्वास छिपा है;
मुझे न भाते स्वप्न कभी नन्दन कानन के
मुझको तो संघर्ष भरा संसार बहुत है।

प्रतिदान न चाहूंगा

मैं दूंगा जग को दान कभी प्रतिदान न चाहूंगा !

ये दिन न रहेंगे नहीं रहेगा गहन अंधेरा भी,
मेरे अंधियारे पथ पर होगा मधुर सवेरा भी;
मेरे भावों के कुंजों में ऋतु-पति भी आयेगा,
मेरे गीतों के साथ धरा का कण-कण गायेगा;
निष्प्रभ अधरों को गीतों का पीयूष पिलाकर मैं,
देखूंगा मोद मनाता मन में नहीं समाऊंगा !

वैभव न सही तो भावों का ही कोष उठाये मैं,
अपने अंतस् में रत्नों का आगार सजाए मैं;
जाऊंगा पथ पर जहां प्रगति के पैर फिसलते हैं,
भीषण झंझा तूफान थके पन्थी को छलते हैं;
मैं मतवाला सा बाँहों में भर थके बटोही को,
अपनी वीणा से साहस का संगीत सुनाऊंगा !

मैं झोंपड़ियों पर उत्तुंगी महलों को वारूंगा,
मैं अस्थि शेष जन पर भावों का कोष निसारूंगा;
कुटियों की आहें चीख-चीख कर मुझे बुलाएंगी,
शोषण की दीवारें तब मुझको रोक न पाएंगी;
नर-कंकालों के पद-चिन्हों पर पांव बढ़ाकर मैं,
उनके रोदन को देख दृगों से धार बहाऊंगा !

जिस नभ में चारों ओर ध्वंस के मेघ बरसते हैं,
जिस धरती पर प्रतिक्षण विनाश के साधन सजते हैं;
वह लोक जहां भाई का दुश्मन बन बैठा भाई,
जिस नभ में घिर कर प्रलय मेघ लेते हैं अंगड़ाई;
ऐसी दुनियां को सागर के अन्तस् में पहुंचाकर,
हिमगिरि पर बैठा नई सृष्टि का साज सजाऊंगा।

मैं दूंगा जग को दान कभी प्रतिदान न चाहूंगा

दो चतुष्पदियां

तेरी दुनियां की हर गली में प्यार पल रहा है,
भृंग के गीत पर हर कली का मन मचल रहा है;
हाथ में आरती लिये रूप की दुलहन खड़ी,
चांद की बाट में प्यार का दीप जल रहा है!

यह समझना नहीं कि मैं जिन्दगी से दूर जा रहा हूं,
या किसी के प्यार की सौगन्ध को भुला रहा हूँ;
किन्तु जो वेदना जगी है मूक प्राणों में,
बार-बार गाकर उसे अमर बना रहा हूं!

दीप जलाया होता

यदि तुमने मेरी मंजिल पर दीप जलाया होता,
मै क्यों सिर धुन-धुन रोता;

मेरे मन-मन्दिर का दीपक बुझा घिरी अंधियारी,
जब-जब शूल चुभे प्राणों में आई याद तुम्हारी;
यदि तुम होते साथ देखते पथ के घन कजरारे,
जिन की स्याही में डूबे हैं कितने चाँद-सितारे;
अगर बहारों ने पतझर को गले लगाया होता!
मै क्यों सिर धुन-धुन रोता!

अरमानों की आहुति देकर गीत तुम्हारे गाए,
लोरी दे देकर प्राणों में कितने दर्द सुलाए;
तूफानों में अपनी नौका खेते-खेते हारा,
पर मेरे मन के माँझी ने पाया नहीं किनारा;
यदि तुमने नादान समझ मुझको अपनाया होता!
मैं क्यों सिर धुन-धुन रोता!

फिरा भटकता मैं बन-बन में ले अपना इकतारा,
मिली जिन्दगी और मौत ने सौ-सौ बार दुलारा;
कितनी दीं सौगन्ध मगर विश्वास उन्हें कब आया,
इसीलिए जीवन में अपना सब कुछ हुआ पराया;
यदि तुमने नादान समझ मुझको अपनाया होता!

संध्या हो आई !

न जाओ अब निर्जन की ओर,
बटोही संध्या हो आई ।

रवि का रथ रुक गया प्रतीची के स्वर्णिम–प्रांगण में,
लौटे नभ-पथ छोड़ पखेरू तम छाया कण-कण में;
रजनी ने अम्बर में काली चादर फैलाई ।
बटोही संध्या हो आई !

बिखर पड़े उसके अंचल से सब माणिक मोती,
इसीलिए रजनी देखो चुपके–चुपके रोती;
व्योम–बीथिका में नीरवता लेती अंगड़ाई ।
बटोही संध्या हो आई !

उटज-अजिर में मैंने भी फल–फूल सजाए हैं,
अतिथि तुम्हारे स्वागत को घृत दीप जलाए हैं,
चरण धोकर करलो श्रम दूर कलश में जल हूँ भरलाई ।
बटोही संध्या हो आई !

करो इस कुटिया का कल्याण कहो अब कैसे सोच विचार,
न टालो प्रिय मेरा अनुरोध तुम्हें सौगन्धें सौ-सौ बार,
उठे प्राची पथ से घन-घोर, बटोही संध्या हो आई !
न जाओ अब निर्जन की ओर !

निस्तब्ध डगर पर खद्योतों की कैसी झिलमिल है,
दुर्गम पथ है, अतिदूर तुम्हारी राही मंजिल है;
उठीं सलिला में तीव्र हिलोर, बटोही संध्या हो आई !
न जाओ अब निर्जन की ओर !

रे पथ !

रे पथ मुड़ चल उस ओर, जहां है दूर सजन का देश !

आकर पूनम का चाँद जहाँ का तम हरलेता है,
बासन्ती सुरभित पवन विजन में स्वर भर देता है;
रंजित करता उद्गार जहाँ नित स्वर्ण सवेरा भी—
बिखराता अधरों पर लाली ऊषा में बाल-दिनेश ।

झुरमुट में जहाँ पखेरू सुन्दर नीड़ बनाते हैं,
भटके हरिणों के युगल जहाँ मिल मोद मनाते है;
उस निर्मम परदेशी को पिछली याद दिलानी है—
बस इसीलिए पलभर रुकने का भाव नहीं अवशेष ।

उन खण्डहरों की याद हमें रह-रह कर आती है,
धुंधली अतीत की झलक सहज बेसुध कर जातीहै;
उस शुभ्र शिला पर जहाँ प्रणय के हाथ बढ़ाए थे—
जिस पुर में लाया करते थे पंछी उनका सन्देश ।

जिन गिरि-शिखरों पर बैठ, मिलन के दीप जलाए थे,
उनकी पद-रज को चूम सिहरकर फ़ूल चढ़ाए थे;
उन लता-गृहों में फिर से आ रे ! निर्जन के राही—
आतुर है तेरी रानी तुझसे कहने को प्राणेश !

नियति

नियति पर कब किस का अधिकार ?

मिलन की थी अबाध एक चाह,
उमड़ मानस का जलधि अथाह,
तोड़ काया के कूल–कगार,
चाहता है जाना उस पार;
किन्तु उठते जब पथ पर पाँव
तभी तूफानों का संचार !

युग युगों का उरगत उत्ताप,
हृदय कम्पित करता चुपचाप.
रही आशा तब तक थे मौन,
निराशा में अब किस का कौन ?
सजल हैं अब तो प्यासे नयन
प्रवाहित है आँसू की धार !

बीहड़ों की रजनी घनघोर,
नहीं जाने देती उस ओर;
लौटने का जब करे प्रयास,
तुम्हारा सुन लेते मृदुहास;
शलभ का जलना दीपक शिखे,
तुम्हारा हंसना ही व्यापार !

गणतन्त्र-दिवस

तुम आते हो हर वर्ष नया उल्लास लिए
बलिदानों का इतिहास नया कर जाते हो
हर तिनका धरती का मुखरित होकर गाता
तुम माटी के कण-कण में स्वर भरजाते हो

जो युग की गति से धूमिल सी हो जाती है
तुम कहते उस लोहू की अमर कहानी को
तुमने तोड़े थे कठिन गुलामी के बन्धन
लेकर आये थे आजादी कल्याणी को

पर आज सभी के आगे कठिन समस्या है
घिर रहे गगन में मेघ प्रलय के कजरारे
चांदनी रुआसी घूम रही शमसानों में
आँसू भर-भर कर रोते अम्बर के तारे

कवि कालिदास की शकुन्तला के कुंजों में
अब बारूदों के मेघ बरसने वाले हैं
असहाय यशोदाओं की गोद भरी जिनसे
उनको ऐटम के विषधर डसने वाले हैं

ये सूरदास के पद, तुलसी की रामायण
मीरा की मस्ती कौन यहाँ फिर गायेगा
विद्यापति दादू तुकाराम फिरदौसी की
स्वरलहरी फिर धरती पर कौन सुनाएगा

क्या गेटे-गालिब की दुनियां लुट जाएगी ?
मिल्टन होमर शैलो जगसे खो जाएंगे ?
क्या निश्चय ही इस महाप्रलय की ज्वाला में
दुर्गा-लक्ष्मीबाई के स्वर सोजाएगे ?

निर्माण दिवस, देते जाम्रो वरदान मुझे
मैं जीते जी ऐसा न यहां होने दूंगा
जिस धरती पर मानवता पलती आयी है
मैं वहां बिषेले बीज नही बोने दूंगा

यह पूरब से पश्चिम तक धरा हमारी है
दुनियाँ का हर इन्सान हमारा भाई है
सारी दुनियां को एक कुटुम्ब बनाएगे
अब नए एशिया ने यह शपथ उठाई है ।

ढूंढो ऐसे इन्सान को

प्रगति पगो में, सृजन करों में, आंखो में सन्धान हो,
मांटी के हर पुतले में ढूंढो ऐसे इन्सान को।

नया सवेरा हुआ यहाँ बसन्ती चली बयार है,
फिर भी कितनी ही गलियों में आई नहीं बहार है;
ओ अम्बर के चांद सितारो, मुझको तनिक जवाब दो–
मधुऋतु को बन्दी करने का क्या तुमको अधिकार है?
जिसकी सूखी गई हो काया पर न गया अभिमान हो,
मांटी के हर पुतले में ढूंढो ऐसे इन्सान को!

लिले स्वर्ण के तीर और चांदी की नई कमान हैं,
भूल रहे सन्धान पाण्डु-सुत भोले हैं नादान है;
कितनी ही द्रोपदी भूख से व्याकुल हैं लाचार हैं,
पार्थ पराजित हुए आज तो दुर्योधन बलवान हैं;
लिसको थोड़ा भी इस युगमें अपने पथ का ध्यान हो,
मांटी के हर पुतले में ढूंढो ऐसे इन्सान को!

झूम रही सरसों की फलियाँ जौ-गेहूं की बाल हैं,
जिनकी मस्ती पर ही हम सब जीवित हैं, खुशहाल हैं;
किन्तु लगाते हैं श्रम कर के सुवरष के अम्बार जो
वे ही बेचारे धरती पर भूखे हैं कंगाल हैं;
संघर्षों में रहकर भी जिन अधरों पर मुस्कान हो,
मांटी के हर पुतले में ढूंढो ऐसे इन्सान को!

दिनेशचन्द्र पांडेय

मै भिण्ड जिले के ऐतिहासिक स्थान अटेर का निवासी हूँ जहाँ के खँडहरों में भदौरिया राजाओं की गाथाएं बिखरी पड़ी हैं, जहाँ की मिट्टी चम्बल को प्यासी निगाहों से देखती है, परन्तु चम्बल लहरों का घूंघट उठा के बार बार इसे देखती है, और फिर सिर नीचा किये चुपचाप चली जाती है। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा यही रह कर हुई। विक्टोरिया कालेज लश्कर से बी० ए० करने के बाद शासकीय सेवा में प्रविष्ट होकर मैंने एल० टी० कालेज देवास से एल० टी० का प्रशिक्षण ग्रहण किया। इस समय मै माध्यमिक पाठशाला लहरौली का प्रधानाध्यापक हूँ।

यदि प्रतीकात्मक शैली में कहा जाय तो मै यह कहूंगा कि उदास फूल और कलियों की आँखों में आँसू देख कर मैंने चम्बल के ऊपर होते हुए अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की है। मेरा गीत रूखा हो सकता है—क्योंकि यह बहारों में नही पाला गया है, यह तो आग और आँसू में ढाला गया है। इतना होते हुए भी मेरा गीत निराश नहीं है। उज्ज्वल भविष्य का विश्वास मेरे गीत का प्रेरक है।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. गीत ३१

२. गीत ३२

३: पूनम का त्यौहार ३४

४, बादलों से ३५

५. मिट्टी उठती है ३७

६. जिन्दगी का गीत ३९

७. गीत ४१

८. कोकिल से ४३

गीत

दीप जैसा जल रहा हूँ, स्नेह जैसा गल रहा हूं,
किन्तु ले विश्वास माटी का धरा पर चल रहा हूँ।
है धरा की गोद में संसार मेरा,
और जिन्दा जिन्दगी से प्यार मेरा;
फूटते अंकुर न जब तक ज्योति-कण के
आ नहीं जाता यहाँ जब तक सबेरा,
मै लिये विश्वास में जलती जवानी ज्योति-पंथी, ज्योति-पथ पर चल रहा हूं।
आँधियों ने खूब जी भर सर उठाया,
और साहस पर तिमिर था खिलखिलाया,
किन्तु मैंने प्राण की बाजी लगाकर
रात भर जल कर सुबह को था बुलाया।
एक मेरी और पतिंगों को कहानी राख माथे पर चिता की मल रहा हूं।
खुद तिमिर पीकर उजेला बाँटता हूँ,
रात का पर्वत किरन से काटता हूं;
मै अँधेरे की अगम गहराइयों को,
एक डोरी से किरन की पाटता हूं।
एक मेरी और बिजली की कहानी, आग पानी मे सदा मे ढल रहा हूँ।

गीत

तुम पथ पर जितने शूल बिछाओगे, मै उन पर अंगारे बन छाऊंगा ।
तुम तम में जितने प्रहर बिताओगे, में उतने दीपक गीत जलाऊंगा। ।

पगली धरती की प्रीति पुरानी है
सूरज की चढती हुई जवानी से,
मिट्टी ने कोई देखा है सपना,
कहती मुख धो शबनम के पानी से ।
ले किरन-तूलिका, फूलों की प्याली,
प्रतिदिन कोई तस्वीर बनाती है ।
पर रात फेर देती आकर स्याही,
साधना अधूरी ही रह जाती हैं ।

जब जब सपनों का मधुवन उजड़ेगा, में फूलों का संसार लुटाऊंगा ।

हरियाली की चादर लहराती है,
संध्या अलकों में डूब नहाती है ।
पगडंडी भरती माँग सुहागिन की,
मेंडों की गोरी बाँह लजाती है ।
नयनों की गागर छलकी जाती हैं,
पुतली-पनिहारिन भर भर लाती है ।

क्या पलक किनारे छोड़ गया कोई ?
श्यामा जो रह रह कर अकुलाती है।
पर जब जब वंशी का स्वर डूबेगा, मैं बिछुड़े मन के मीत मनाऊंगा।
यह कलियों की आँखों वाली धरती,
यह सौरभ की साँसों वाली धरती,
वक्ष पर डाल कर नदियों की वेणी,
यह फूलों के हासों वाली धरती,
मधुमास लुटाती जब इठलाती है,
कोयल पंचम स्वर मे दुहराती है।
यह कौन आंख एटमी उठाता है ?
जो इसकी काया झुलसी जाती है।
जब जब कोयल का जी भर आयेगा, मैं गीतों से उसको बहलाऊंगा।
ये चहक रहे जो पंछी मतवाले,
हैं बड़ी उमंगों से इसने पाले।
क्यों व्यर्थ यहाँ तुम जाल बिछाते हो,
ओ युद्धों की भीषण काया वाले।
पर यहां शांति का होना नया नहीं,
मन की मस्ती का कोना नया नहीं।
पर जब तन की ही हस्ती मिटती हो,
धरती का दुख रोना यह नया नहीं।
मैं मन की मस्ती में भी गाऊंगा, पर दुख होगा तो व्यथा सुनाऊंगा।
तुम तम में जितने प्रहर बिताओगे, मैं उतने दीपक-गीत जलाऊंगा।

पूनम का त्यौहार

आज चाँदनी खोई खोई सी यहाँ
कहती कोई भूली-भूली बात है ।
पायल के रौनें बिखरे आकाश में-
रौनों का रोने वालों का साथ है।
ज्वारों की जुल्फें सम्हालती उठ रही
धरती, मेरे मन में उठता ज्वार है।
चलो रखाने खेत हाथ ले गोफनी-
चाँद कह रहा पूनम का त्यौहार है।
चिकने चिकने हर पीपल के पात में
भींगी भींगी तारों की मुस्कान है ।
सिहर सिहर उठती खिन्नी की डाल भी··
क्योंकि उठ रहा चाँद-नया इन्सान है।
जो बोए थे तारे नभ में साँझ ने-
चाँद कर रहा है रखवाली रात में।
नये सबरे का सूरज कल आयगा-
फसल काटने होगा तब वह साथ में।
चाँद कह रहा है हँसकर आकाश में-
मुझे न छेड़ो में गैंदे का फूल हूं,
जो करने आजाद धरा को बढ़ रहे-
उन चरणों की रखता सर पर धूल हूँ।

बादलों से

बादल तुम कितने सुन्दर हो !
जब कि नील-नभ पर छा जाते,
धरती में करने जीवन-संचार ।

धीरे धीरे हौले हौले मस्त डोलते राज-हंस से,
किसी विरहिणी का संदेशा,
पहुँचाते प्रिय-द्वार ।

कभी स्वर्ग की झाँकी दिखलाते मानव को,
सतरंगे बन्दनवारों से,
सजा इन्द्र-दरबार ।

जहाँ चंचला सी गोरी परियों का नर्तन,
सोम-सुरा से देवों का
होता है नित सत्कार ।

बादल तुम कितने कुत्सित हो।
जब कि राष्ट्र-नभ पर छा जाते,
मानवता का करने को संहार।

मानव के कंकालों का ही बज्र बनाकर इठलाते तुम,
'ऐटम', 'उदजन' करते मानव
पर ही भीम-प्रहार।

किन्तु न भूलो ऐ! पश्चिम के काले बादल!
एक श्याम ने, गोप बाल ने निज
तर्जनि पर रोकी थी जल-धार।

आज एशियावासी कितने ही कालों की
कोटि-तर्जनी तुम्हें रोकने
को हरदम तैयार।

मिट्टी उठती है

कहदो बात नई यह बन्द जबान से
मिट्टी उठती है सोये वीरान से ।
गीत सुनाने वाली कोयल गा रही,
डूबी हरियाली के भीगे प्यार में।
मीत बनाने वाली कली बुला रही,
घिरी हुई जो शूलों की दीवार में ।
डोल गई पछुवा फूलों के गाँव में,
विरहिन बैठी है बिरवा की छाँह में ।
नयी नयी पौधें हैं माली ला रहा,
किरन मिलेगी फिर रूठी मुस्कान मे ।
कहदो बात ....

ठोकर खा खा धूल बड़ी बैचेन हो,
आँधी की घोडी पर हुई सवार है ।
लहरें भी बेचैन बदलती करवटें,
सागर में आने वाला अब ज्वार है ।
तू जो भूखा है सोने के देश में,

तू जो फिरता भिखमंगों के वेषमें,
अपने हक पर मर मिटने की ठान तू,
आवाजें आती हैं यह शमशान से ।
कह दो बात ....

मिट्टी की राधा तकती घनश्याम को,
कब तक जलती रहे बिरह की पीर में ।
खंडहर में लो कूक उठी है बांसुरी,
अब न उमंगें बँध सकतीं जंजीर में ।
मोरों की आवाजें यह बतला रहीं,
मेघ-मल्हारें गाने की ऋतु आ रही ।
नयी चेतना जाग रही है धूल में,
अंकुर फूटेंगे धरती के गान से ।
कह दो बात ... ...

अंधियारी कब तक यूँ ही भरमायगी,
बहुत रो चुकी दूब नदी के कूल की ।
धरती के माथे की बिंदिया लुट रही,
नन्हे नीले लाल गुलाबी फूल की ।
नये सबेरे की आहट पहिचान तू,
अपने बल को जान अरे हनुमान तू ।
उठ परिवर्तन की ले नयी छलांग तू,
रात मिलेगी पुनः नये दिनमान से ।
कह दो बात.. ....

जिन्दगी का गीत

कौन जिन्दगी का गीत गा रहा,
बज उठी है आज प्राण बीन क्यों ?
एक एक क्षण मुझे बुला रहा,
लग रहा है आज जग नवीन क्यों ?

एक साँस प्राण में कसक चली,
एक साँस आश बन अटल रही,
एक साँस रात में कसक चली,
एक साँस प्रात में मचल रही।

जिन्दगी का गीत साँस बन सदा,
उठ रहा है, गिर रहा है ज्वार में,
एक टेक है कि जो अलग रही,
हाट में, बाजार में, मजार में।

चढ़ रही उतर रही है लय-लहर,
है अधीर आज राग–मीन क्यों ?
कौन जिन्दगी का गीत गा रहा,
बज उठी है आज प्राण-बीन क्यों ?

एक गीत है मुझे भुला रहा,
एक गीत है मुझे बुला रहा,

एक गीत है मुझे जगा रहा,
एक गीत है मुझे सुला रहा।

एक गीत रीति, एक प्रीति है,
एक गीत जीत, एक हार है,
एक गीत शूल, एक फूल है,
एक गीत प्रात, एक रात है।

एक गीत है मुझे रुला रहा,
एक गीत कह रहा है दीन क्यों ?
कौन जिन्दगी का गीत गा रहा,
बज उठी है आज प्राण-बीन क्यों ?

एक स्वर उठा कि हँस उठा जनम,
एक स्वर उठा कि रो उठा मरण,
एक स्वर उठा कि उठ गई धरा,
एक स्वर उठा कि बढ गए चरण।

एक स्वर जनम में भी है रो रहा,
एक स्वर मरण में मुस्करा रहा,
एक स्वर धरा को है डुबो रहा,
एक स्वर धरा पै स्वर्ग ला रहा।

एक एक स्वर मुझे पुकारता
सांस, गीत, स्वर रहे अधीन क्यों ?
कौन जिन्दगी का गीत गा रहा,
बज उठी है आज प्राण बीन क्यों ?

गीत

जब कि तेरे गीत का होगा किसी दिन फैसला,
तब कहेगा ज्वार, मन का प्यार तुझको क्या मिला ?

दर्द में जो बन रही तस्वीर को पहिचान ले,
आंसुओं में गल रही जंजीर को तू थाम ले ।
जोकि तेरे आ रहा मन में उसे तू जान ले,
हो हवा का रुख जिधर उस ओर चादर तान ले ।

जब कि तेरी नीति का होगा किसी दिन फैसला,
तब कहेगा हाथ, जन का साथ तुझको क्या मिला ?

जब कि तेरे गीत का ....

बोल तेरा काफिला किस ओर से है आ रहा ?
कौन तेरे गीत का परचम कहां फहरा रहा ?
कौन तेरी जिन्दगी पर धूप बन के छा रहा ?
कौनसा पौधा धरा की गोद में मुस्का रहा ?
जब कि तेरी प्रीति का होगा किसी दिन फैसला ?
तब कहेगा ज्वार जन, का प्यार तुझको क्या मिला ?

बोल किसकी आह में तूने मिलाई आह है ?
बोल किसकी चाह में तूने मिलाई चाह है ?

कौन भूले राहगीरों को बताई राह है ?
दाह में जलते हुओं का कब मिटाया दाह है ?
जब कि तेरी चाह का होगा किसी दिन फैसला
तब कहेगी आह, मन का दाह तुझको क्या मिला ?

जब कि तेरे गीत का......

देख कोई बेबसी की बेड़ियाँ तड़का रहा,
देख कोई इस चमन में है अमन बरसा रहा,
देख कोई स्वर्ग से नहरें बहा कर ला रहा,
मैड़ पर कोई नयी फसलें उगाकर गा रहा।
जब नये इन्सान का होगा किसी दिन फैसला
तब कहेगा खेद, तन का स्वेद इनको क्या मिला ?

जब कि तेरे गीत का......

कौन ईंटों और गारे में पसीना घोलता ?
कौन मन्दिर मस्जिदों की नींव से है बोलता ?
कौन देखो उठ रहा है भोर की मुसकान में ?
कौन देखो जा रहा है नाव ले तूफान में ?
जब नये भगवान का होगा किसी दिन फ़ैसला
तब कहेगा ध्यान, मन का ज्ञान इनको क्या मिला ?

जब कि तेरे गीत का......

कोकिल से

छेड़ मत ओ री विरह की तान कोकिल !
मत जगा सोये हृदय की वेदनायें !
हृदय में भर कर उदासी सांझ ने किसको पुकारा ?
धार आगे बढ़ गई थी, ताकता अपलक किनारा ?
चीख उठती थी टिटहरी पीर में रह रह किसी का,
छोड़ निर्मोही गया था तोड करके प्रेम-कारा,
किन्तु फिर भी स्नेह सिंचित इस हृदय को
क्यों जलाता है किसी का ध्यान कोकिल ?
छेड़ मत ओ री विरह की तान कोकिल !

स्वप्न मेरे सो रहे हैं बन्द कलियों के नयन में,
गीत मेरे भटकते हैं सांझ के सुनसान वन में,
नील कुंजों में भटकती तारकों की स्वर्ण किरणें
और अलियों के सुहाने गीत बन्दी है नलिन में,
प्रात होते छोड़ किरणों के प्रखर शर
क्यों जगाता है इन्हें दिनमान कोकिल ?
छेड़ मत ओ री बिरह की तान कोकिल !

व्यर्थ क्यों तू छेड़ती है दर्द का यह गान कोकिल ?
पीर अन्तर में छिपाये सो रहा इंसान कोकिल,
भूमिवासी की व्यथा बस एक धरती जानती है,
और धरती की व्यथा की सिंधु है पहिचान कोकिल,
सिंधु में सोई तरंगों की व्यथायें,
क्यों जगाता है इन्हें तूफान कोकिल ?
छेड़ मत ओ री बिरह की तान कोकिल !
मत जगा सोये हृदय की वेदनायें ।

मुकुटबिहारी त्रिपाठी

१५, १६ साल की अवस्था से ही काव्य के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि उत्पन्न हुई, तभी से कुछ न कुछ लिखने का प्रयास किया। विद्यार्थी जीवन में हाईस्कूल व इन्टर कक्षाओं तक का समय मेरी काव्य साधना का शैशव कहा जा सकता है।

बी. ए. तथा एम. ए. के चार वर्ष मेरी साहित्यिक चेतना को विकसित करने मे पर्याप्त सहायक हुए साहित्यकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला जिससे काव्यसृजन की ओर प्रेरणा और भी बलवती हो उठी।

एम० ए० करने के पश्चात मध्यभारत शिक्षा विभाग मे अंतर महाविद्यालय भिण्ड में अध्यापक के पद पर मेरी नियुक्ति हुई। कल्पना का लोक पीछे छूट चुका था। धीरे धीरे दुनिया को निकट से देखने का अवसर मिला। पिछले रोमांटिक संस्कारों का मोह जाता रहा, आकाश के तारों को न देखकर धरती के फूलों को दुलराना चाहा। यहाँ पर काव्यपथ का नया मोड़ प्रारम्भ होता है। वैयक्तिक आघात प्रत्याघातों के साथ ही सामाजिक अन्तश्चेतना ने प्रभावित किया, लोक जीवन की ओर मेरी दृष्टि गई।

मेरे विचार से सच्चा साहित्य वह है जो देशकाल के बन्धनों से मनुष्य को ऊपर उठाकर उसमें बृहत रूप की चेतना का अभ्युदय कर संकीर्ण स्वार्थ के दायरे से निकाल कर विश्वव्यापी धरातल पर प्रतिष्ठित करे, मनुष्य 'स्व' के साथ 'पर' को समझे; इसीकारण हर डबडबाई आंख की ओर मेरी कविता आश्वासन भरी दृष्टि से देखती है तथा शुष्क अधरों पर सरस मुस्कान लाने के लिये बेचैन है।

आज के निराशामय, रूढ़िग्रस्त जर्जर समाज में जनजीवन अत्यधिक संतप्त प्रतीत होता हैं। ऐसे समय निराशा के स्वर, प्रेम की रागिनी, वेदना का क्रन्दन सभी कुछ बेवक्त की शहनाई सा लगता है। मैं चाहता हूं कि कविता संघर्ष पर बढ़ते राहगीरों के डगमग पैरों में शक्ति भरे, कठिनाइयों से जूझने वाले हर इंसान को अपने अंचल की शीतल छाया में विश्राम दे, मनुष्य को आत्महीनता के सागर से निकाल कर, पौरुष को जागृत कर, आत्मविश्वास के उत्तुंग शृंग पर सुशोभित करे। समय की गति को पहिचानते हुये नये युग की मान्यताओं को स्वीकार करे। कवि के लिये, कविता के लिये यही मेरा संदेश है। मेरी रचनायें मेरे कथन के सत्य को किस अंश तक व्यंजित करती है इसका निर्णय पाठक स्वयं करें, इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि पथ के गीत मंजिल तक पहुँचतेपहुंचते बहुत कुछ मेरे दृष्टिकोण की साक्षी देने लगेंगे।

अनुक्रमणिका

१. मुक्तक	...	....	४७
२. दुपहरी की तपन में	....	....	४८
३. मन के मीत	....	....	५२
४. कलम की चुनौती	....	...	५३
५. प्रतिदान	...	....	५५
६. शांति गीत	...	....	५७
७. उपवन के कांटे	....	....	६२
८. मधुमास लिये जीता हूँ	....	....	६४
९. मत किसी की राह में कांटे बिछाओ		...	६६

जो न गौरव गर्व से देवत्व के दब,
देखकर दुर्बल मनुज को मुस्कराये,
जो कि मन की साधना वरदान कर दे,
जो झुके हर शीश को ऊंचा उठाए,
मैं उसे भगवान कहता हूँ।

★

राह के हर शूल को पुचकारता
आफतों से जूझ कर जो चल रहा,
विश्व को आलोक देने के लिये
दीप सा निज को मिटा कर जल रहा,
मैं उसे इंसान कहता हूँ।

★

जो न करुणा से कभी पिघला हृदय,
जो दुखी को है बँधा धीरज न पाता,
जो कुचलता चल रहा है फूल पथ के,
नीड़ पर बिजली गिरा, जो स्वयं का मधुवन सजाता,
मैं उसे पाषाण कहता हूं।

★

जो समय के ज्वार में उठता लहर सा,
घोर तम में जो कि अरुणोदय बुलाता,
जो थके हारे बटोही को, मृतक को,
गीत की संजीवनी देकर जिलाता,
मैं उसे कवि-गान कहता हूँ।

दुपहरी की तपन में

गीत लिख गायक दुपहरी की तपन में,
चाँदनी मे गुनगुनाना छोड़ दे ।

मानता चाँदी सितारों से जड़ा
नील अंचल है बहुत मनभावना,
मानता हूँ अप्सरा का लोक यह
है बहुत रमणीक और सुहावना ।

शून्य में मन व्यर्थ ही भटका किया,
पैर सबके इस जमी पर चल रहे,
जो कि है आधार जीवन मौत का,
और जिसकी गोद में सब पल रहे ।

बरसते हैं मेघ धरती की जलन से,
चांदनी कब कब सुधा बरसा रही ?
जी रहा इन्सान तो बस आदमी के प्यार मे
उर्वशी तेरी सदा है व्यर्थ ही भरमा रही,

गीत लिख इस धूल की तू वन्दना के,
चाँद से यों लौ लगाना छोड़ दे ।

यह सुरभि पी मस्त मतवाली हवा,
मानता हूँ रात यह रंगीन है,
किन्तु लू के झकोरों में पल रही
जिन्दगी कितनी अरे गमगीन है।

दे रही झंझा चुनौती जब तुम्हें,
व्यर्थ है फिर क्या न कलियों से उलझना ?
क्या न ये अभिसार की रंगरेलियां
इस कठिन सघर्ष में है एक सपना ?

भ्रमर की फरियाद सुन मत हो दुखी,
पोंछ मत शबनम कली के गाल से,
आपदाओं से थके हारे मनुज का
स्वेद पोंछो आज उसके भाल से ।

ल रही अंगड़ाइयाँ ऊषा नये युग जागरण की
स्वप्न महलों का बनाना और मिटाना छोड़ दे।

यह कठोर कुमार्ग पथ अंगार हैं
कल्पना की कामिनी चल पायगी,
चाँद आयेगा धरा पर यदि कभी
रेशमी चुनरी अरे जल जायगी।

व्यर्थ हैं परछाइयों को यों पकड़ना,
ओस से है प्यास बुझ सकती नहीं
फूल चुन आकाश गंगा के किनारे,
यह धरा है स्वर्ग बन सकती नहीं ।

तुम सितारों से चुराते रोशनी,
डूबता जाता इधर दिनमान है,
भटकता नन्दन निकुंजों में उधर
होरहा यह घर तेरा वीरान है

गीत गा तू आज नव निर्माण के,
यदि नहीं तो गीत गाना छोड़ दे ।

प्रेम कुन्जों में किसे हो खोजते ?
नूपुरो की सुन रहे झंकार हो ?
किस रसीली बांसुरी ने मन लुभाया,
सुन न पाते जो करुण चीत्कार हो ।

वह हवा है कौनसी पागल बनाए ?
किस मलय की सुरभि प्राणों में बसी ?
किस अलक के जाल में उलझा हुआ मन ?
गुदगुदाती किस नवेली की हंसीं !

किन्तु आंखें खोल कर देखो जरा
यह न सच्चा रूप है संसार का,
रक्त से रंजित डगर है सोचलो,
यह न क्रीड़ा स्थल तेरे अभिसार का।

गीत लिख तू आस का विश्वास का,
यह करुण रस तान भरना छोड़ दे।

× × × ×

तुम जो पृथ्वी पर आकाश उतार लाते हो,
जगमग दीपों का फिर आलोक बिखराते हो,
पूछता हूँ तुमसे मैं ऐ दिवाली के मनाने वालो,
अपने मन का क्या कभी कलुष देख पाते हो?

× × × ×

जो मिला जीवन उसे सम्मान दो,
मर्सिया को छोड़, गौरव गान दो,
यह निराशा, ऊब लाचारी विवशता,
रह न पायेगी सदा यह जान लो।

मन के मीत

मेरे मन के मीत रे !

तूने कितने ही तो साथी बसते नीड़ उजड़ते देखे,
तूने दुःख के भी अगणित स्वर दबते और उभरते देखे,
तूने देखा तिमिर पंथ पर मचल रही सी दीपशिखा को,
तूने हंसते अधर और कितने ही नयन सिसकते देखे,
चला आ रहा है दुनियाँ में बनने मिटने का क्रम यों ही,
आज देख सुनसान डगर तू
होना मत भयभीत रे !

चिंता क्या है पथ पर कितना घिरा हुआ अंधियारा ?
चिंता क्या ओ माँझी, तुझ से कितनी दूर किनारा ?
कितना लहरों में यौवन है, कितना ज्वार सबल है ?
कितनी झंझा तीव्र और यह कितनी धार प्रबल है ?
तू हर आफत को हंस हंसकर, गले लगाता चल अभय,
जब तक तेरे अंतर में हैं
एक मधुर संगीत रे !

सावन की बदली भी देखो, बूंद बूंद बन ढल रही,
पथ को आलोकित करने दीपक की काया गल रही,
तिल-तिल मिट कर निशा व्योम में स्वर्ण प्रभात बुला रही,
बनने मंजुल हार कली है कांटों में ही पल रही ।
तू उर का विश्वास जगाता, नेह जलाता चल सदा,
संघर्षों में कभी पराजित
हो न हृदय की प्रीति रे !

कलम की चुनौती तलवार को

मैं कलाकार की कलम विश्व में ,नवयुग की निर्माता हूं ।
मैं दलित देश की आस और जन-जन की भाग्यविधाता हूं ।
में मनुज सभ्यता संस्कृति का हूं रचती एक इतिहास नया ।
मैं पतन पाप के बीच जगाती उठने का विश्वास नया ।

मच गई क्रांति विद्रोह जगा, भैरव स्वर मेरा बोल उठा ।
मेरी वाणी मे शक्ति कि जिससे भूमंडल भी डोल उठा ।
वह शक्ति कलम में छिपी हुई जो हरती युग का जड़ प्रभाव ।
मेरी स्याही में वह अमृत, धो देता जो जग का विषाद ।

मेरा संकेत जभी जागा, जग पड़ी सुप्त सी कुरबानी ।
मेरी चिनगारी से युद्धों की ज्वाल हुई पानी-पानी ।
मै शांति क्रांति का महामन्त्र, सन्देश सुनाती चलती हूँ ।
मै लिये नाश, निर्माण, अमरता की गादी में पलती हूं ।

जगती के वृद्ध विचारो पर मै उठती हुई जवानी हूं ।
दृढ़ अटल शिलाओ बीच समय सरिता की एक रवानी हू ।
अनाचार अत्याचारों को तनिक नही मैं सह सकती ।
ताले जबान पर भले पड़े, पर मौन नही मै रह सकती ।

मैंने मिट्टी के पुतलों में है फूंक दिये वे अमर प्राण ।
हैं अधकार में ज्योति दिखाते चलते मेरे ज्वलित गान ।
मैंने धरती को उठा दिया, मैंने ही स्वर्ग झुकाया है ।
मेरे गीतों को सुनकर ही, भगवान धरा पर आया है ।

ये शैले, मिल्टन, टॉल्सटाय, ये दाँते, होमर और कबीर।
ये ही सच्चे हैं सैनानी, ये ही सच्चे हैं युद्ध वीर।
मेरी तीक्ष्ण नोंक मे तलवारों की कुन्ठित धार हुई।
मेरे पौरुष का सिंहनाद सुन, दानवता लाचार हुई।

आदमी बदलता नही कभी केवल तलवारों तीरों से।
आदमी नहीं बँध सकता है इन लोहे की जंजीरों से।
पशु बल, हिंसा से, हत्या से, केवल पशुता ही जगती है।
शोणित के बीजों मे न कभी भी हरियाली उग सकती है।

तलवार बदले राज्य भले, पर जीत कलम की है निश्चय।
है कलम सदा ही अविनाशी, पशुता की केवल क्षणिक विजय।
तलवार भले भयभीत करे, तलवार काट सकती काया।
पर मानव के उर पर तो है अधिकार कलम ने कर पाया।

तलवार तभी चल सकती है, जब जाग उठे सोई उमंग।
यह कलम जगाती वह पौरुष, भरती जीवन में राग रंग।
स्वामी है कलम महान, और तलवार बिचारी दासी है।
है कलम बरसती सुधाधार, तलवार खून की प्यासी है।

संभलो दुनियाँ के हत्यारो मैं शांति गीत लिख रही आज।
ओ नये सबेरे के राही जागो मेरे ऐ नव समाज।
अब इन फौलादी पंजों से, मानवता का संहार न हो।
एटम, उदजन, के भय से अब पृथ्वी पर हाहाकार न हो।

प्रतिदान

तुम मुझे अभिशाप दो चाहे भले ही
मैं तुम्हें अपना सजल वरदान दूंगा।

प्रखर रवि की ज्वाल लेकर शशि उसे शीतल बनाता,
तप्त धरती पर सरस रसधार की किरणें बिछाता।
अग्निशर सी कठिन किरणों का दिवस का दाह पीकर
ले सुकोमल चाँदनी निशि में तपन उसकी मिटाता।

तुम हमारी राह में चाहे रखो जलते अंगारे
मैं तुम्हें पर चाँद की मृदु दूधिया मुस्कान दूंगा।

शून्य में जल, सह प्रभंजन, जो उठाता दुख घनेरा,
स्वयं को ही जो बुझाकर विश्व में लाता सबेरा।
रोशनी से दीप की जगमग दिवाली होगई,
किन्तु उसके तो तले रहता सदा छाया अंधेरा।

डाल कर चादर तिमिर की तुम मुझे चाहे सुलाओ,
मैं तुम्हें पर ज्योति स्वर्ण विहान दूंगा।

सिन्धु का खारा गरल है मेघ ने हँस हँस पिया,
मोतियों सा स्वच्छ जल उसने उसे वापस किया।
आग में पल कर फुहारों में सरस जीवन लिये,
चातकों की प्यास को फिर स्वांति का अमृत दिया।

प्राण की इस बाँसुरी में तुम व्यथा के स्वर भरो,
मैं तुम्हें पर प्रेम का मधुगान दूंगा ।

समझ पाता न जो मुझको यह निठुर संसार है,
गीत का उपहास भी मुझको अरे स्वीकार है।
जबकि वीणा पर हृदय की चोट पड़ती हैं कठिन
निकलती उससे मधुर स्वर मय विकल झंकार है।

तुम हमारी जीत ठुकराओ भले ही,
मैं तुम्हारी हार को सम्मान दूंगा ।

हर कठिन संघर्ष सोया बल जगाता,
हर पतन व्यक्तित्व को ऊपर उठाता।
आंख में आंसू नहीं लाना कभी,
गरल पीकर ही मनुज अमरत्व पाता ।

× ×

हो सकी न तुमको अपनी पहिचान है,
राह का कंकड़ भी गति का व्यवधान है।
मन की कमजोरी बहुत बुरी मेरे दोस्त;
मन के विश्वास से ही पत्थर भगवान है।

शांति-गीत

बहुत बार तुम खेल चुके खूनी होली,
 रंग दिये खून से पृष्ठ अमर इतिहासों के।
मानवता के हत्यारों कुछ सोचो समझो,
 हैं कितने ढेर लगाये तुमने लाशों के।

ओ अरे स्वार्थ के अंधो! अपना हित करने
 तुमने तोपों की तप्त ज्वाल बरसाई है।
तेरी साम्राज्य पिपासा ही नभ मण्डल पर,
 कई बार दुख की बदली बन छाई है।

ये हाहाकार भरे स्वर अब भी गूंज रहे,
 उठ रही बालकों की चीत्कार भरी बोली।
धुंआंधार प्रलयंकर ऐसा मचा दिया,
 छिन गई उषा, संध्या के भी सिर की रोली।

मासूम मधुर नन्हीं-नन्हीं कलियों का मुख
 जलते अंगारों से क्या तुम झुलसा दोगे।
बारूद गैस की खाद डालकर बोलो तो,
 मधुवन में क्या सारे विष वृक्ष उगा दोगे।

अब लो समेट यह कूट नीति का छद्म जाल,
 अब विश्व शांति का नया कारवाँ चलता है।

रोको अपना यह सिंहनाद गर्जन तर्जन,
लो सुखद शांति का सरगम फिर से बजता है।

बारूद न सांसों से भरकर विस्फोट करो,
अब गीत अमन का इंसानों को गाने दो।
भटकी फिरती है शाति कपोती युग-युग से,
फिर नये नीड़ के तिनके उसे सजाने दो।

अगनी विषाक्त गैसों को दूर हटाओ तुम,
गगा की पावन धार स्वर्ग से आने दो।
उद्धार मनुजता का करने अभिशापों से,
ईर्षा, विद्वेष, घृणा, पातक, मिट जाने दो।

हिटलर, मुसोलिनी, जार, शेक अत्याचारी,
मिट्टी इनकी गहरी दब गई मजारों मे।
फिर गांधी, ईसा, बुद्ध उठ रहे हैं ऊपर,
नवयुग की मंगल दायक सृजन पुकारों में।

चल रहे आज हम विश्व-शांति के सुख-पथ पर,
युग की गति को हम नई दिशा में मोड़ेंगे।
हम राह बनायेंगे अपनी नव-मन्जिल की,
खूंरेजी का इतिहास बदल कर छोड़ेंगे।

ज्वालामुखियों की आग बना देंगे पानी,
उपवन को अमृत की धारा से।

दुर्गम चट्टानों को पिघला कर छोड़ेंगे,
लायेंगे बाहर शांति युद्ध की कारा से।

मातम सा छाया यह जो कुहरा गली-गली,
फिर नई जिन्दगी का प्रकाश निखराता है।
जिनकी आंखों के आँसू तक हैं सूख गये
उन आखों को फिर से हंसना सिखलाना है।

यह भीषण कोलाहल अशांति का दुर्दम स्वर
बढ़ रहा, शांति का गीत नहीं रुक पायेगा।
चाहे कितना ही दमन चक्र तू चला आज,
हरगिज न शांति का यह झंडा झुक पायेगा।

तलवार तोप बन्दूक तथा ये टेन्क सभी,
एटम उदजन ये तथा विनाशक वायुयान।
फेंको समुद्र में सारे ही ये अस्त्र-शस्त्र,
पशुता का आराधक तेरा विज्ञान ज्ञान।

धिक्कार सभ्यता को, धिक है उस संस्कृति को,
जो गला काटकर मानवता का पलती है।
धिक्कार अरे सौ बार शांति की देवी को,
नरमेध यज्ञ की आहुति जिसमें जलती है।

ऊसर बंजर, बीरान पड़ा सब जगह देश,
यह धरती विधवा सी दिखलाई देती है।

यह शस्य श्यामला की गोदी है सूनी सी,
ऊजड़े यौवन सी लगती जो हर खेती है।

श्रम सीकर से सींच सींच जो पनप रही
वह उगती फसल लुटी भिखारिन सी लगतीं,
ओ सदाबहारी स्वप्न देखने वाले क्या
वसुधा का पतझर देख नहीं करुणा जगती ?

भैरवी राग गाने वाले कवि की वाणी
फिर विश्व शांति संदेश सुनाने वाली है।
हर उजड़ा चमन बहारों को है बुला रहा,
मरघट की मिट्टी फूल खिलाने वाली है।

अमराई में लुक छिप करके जब कोयल,
पंचम स्वर से जब गीत खुशी का गावेगी
सावन के रिमझिम में अलसायें प्राणों में
पपिहरी कहीं जब मीठा दर्द जगाएगी।

खेतों पर गेंहूं जौ की पकी स्वर्ण बालें
सारी वसुधा पर खुशहाली बिखरायेगी।
धरती का बेटा मेघ मल्हार सुनाएगा,
खेतों की रानी मद से जब इतराएगी।

सूखे सर सरिता उमड़ उमड़ लहराएंगे
निर्जन कुन्जों में मधुर चाँदनी छाएगी।

पनघट की हर सूनी पगडंडी पर,
कोई राधा रस की गागर छलकाएगी

उत्सव के गीतों से गूंजेगा ग्राम ग्राम,
मंगल घट से सज जावेगा जब द्वार द्वार,
हो चहल पहल सब ओर, सब कहीं अमन चैन '
जन जन के मानस में उमड़ेगा सुखद प्यार।

मानव के इन स्वर्णिम भविष्य के सपनों पर,
हम कभी न ये बिजलियाँ और गिरने देंगे।
पी जायेंगे हंस हंस कर के सब कालकूट
रस से हर मन को हर जीवन को भर देंगे।

युद्धों की भीषण हिंसा हत्या बन्द करो,
अब सुखद शांति के बीज धरा पर उपजाओ।
काला नकाब बर्बरता का फेंको उतार,
मंगल प्रभात का सूर्य धरा पर ले आओ।

जीवन की राहों में संभल कर चलना सीखो,
फूल बनने के लिए कांटों में पलना सीखो।
रोशनी जो देना चाहते हो दुनिया को,
दीपक सा तिल तिल कर जलना सीखो।

उपवन के काँटे

उपवन में कांटे अब न अधिक बिखराओ,
फूलों का उसमे मृदु उल्लास भरो।

कुछ झाड़ और झंखाड़ उग रहे क्यारी में,
पीले पत्ते कुछ इधर उधर हैं बिखर रहे।
कुछ अंकुर दबे हुए हैं मिट्टी के नीचे,
कुछ शूल कली को जाने कब से अखर रहे।

जो नई पौध को रोक रहे हैं उगने से,
उन सारे व्यवधानों का नाश करो।

कुछ ऐसे जन्तु विषैले हैं पल रहें यहां,
जिनसे न भ्रमर भी मधु रस पी पाते है।
कुछ ऐसा घना कुहासा सा छाया है,
जिससे न दूब के अंकुर जी पाते हैं।

फिर नई रोशनी की किरणे फैलाओ,
सब जगह मलय की सुरभित श्वास भरो।

कुछ पंछी आज चहकना तक हैं भूल गये,
फूलों के तन क्या, मन भी तो मुरझाये हैं।
हैं लता अनेकों तरुओं से विच्छिन्न पड़ी,
नभ पर कुछ ऐसे काले बादल छाये हैं।

दो सुखद सन्देशा मधु ऋतु का सबको साथी,
पतझर का यह सारा दुखभार हरो।

कुछ ऐसे नये तराने छेड़ो ओ गायक,
हर फूल चमन का पुलकित होकर मुसकाए।
झंझा न झुलस दे हरियाली के दामन को,
सींचो मधु से हर डाल डाल तक लहराए।
नई जिन्दगी का संगीत उभरता है,
अपने भविष्य का मत उपहास करो।

क्या हुआ यदि आज सिर पर भार है,
सामने यदि तिमिर पारावार है।
आदमी गिरकर उठा, उठकर बढ़ा नित,
वह कभी होता नहीं लाचार है।

× × ×

खत्म हो जाये न जीवन की कहानी,
कम न हो जाये युवक तेरी रवानी।
बाँध देना नाव को तट पर नहीं तू,
खेलती मंझधार से हंस-हंस जवानी।

× × ×

फूल की गंध ही भौंरों को बुला लायेगी,
कोयल की कूक सुन मधुऋतु छा जायेगी।
कदमों में शक्ति भर गति में विश्वास करो,
खुद ब खुद मंजिल ही पास चली आयेगी।

मधुमास लिये जीता हू

मैं पतझर में मधुमास लिये जीता हूँ।

पीकर आंसू मैंने सीखा मुस्काना,
पी घोर हलाहल मैंने जीना जाना।
निर्जन वन की इस अटपटी डगर पर,
पथ के काँटों को, निज गति को पहचाना।

जान न पाये जग मेरी दुर्बलता,
मैं अधरों पर मृदुहास लिये जीता हूँ।

तृषा सो गई सागर जब लहराया,
मैंने अपने को सपनों से बहलाया।
बोझिल जीवन ने इतना मुझको चाहा,
जितना मैंने निर्मम होकर ठुकराया।

जग की करुणा का भार न सह पाऊंगा,
मैं अपना ही उपहास लिये जीता हूं।

जलते मरु पर झुक झूम घटा छायेगी,
मधुऋतु में पुलकित हो कोयल गायेगी।
रह न सकेगी सदा चांद पर बदली काली,
एक रोज अमा भी दीपावली मनायेगी।

फिर आशाओं के दीप जलेंगे साथी,
मै ऐसा कुछ विश्वास लिये जीता हूँ।

चार दिवस ही रही यहां हरियाली,
दो क्षण ही छाई नव विहान की लाली।
लू के झोकों से झुलस रही फुलबगिया
पर दूर अकेला छोड़ गया वनमाली।

नश्वर जग के कण कण को अमर बनाने,
मै जीवन में कुछ श्वास लिये जीता हूँ।

तू दुखों की आग में जो बह रहा है,
तू व्यथाओं को विहँस जो सह रहा है,
हैं प्रथम अधिकार तेरा ही सुखों पर,
विश्व का यह सत्य तुझसे कह रहा है।

× × ×

है उषा का हास तम पर मुस्कराया,
ध्वंस में निर्माण ने है सिर उठाया।
हार में भी जीत की आशा अडिग है,
कौन उठते ज्वार को है रोक पाया।

मत किसी की राह में कांटे बिछाओ

पोंछ सकते हो न यदि आँसू किसी के,
मत किसी की राह में काँटे बिछाओ।

जो कि मंजिल के लिये नित चल रहा है पग बढ़ाता,
खून की प्यासी डगर पर स्वेद कण अपने लुटाता,
हो थकित फिर हार कर वह छांह में विश्राम ले,
गिर संभल कर फिर बढ़े विश्वास का सबल जुटाता,

बांह देकर तुम गिरे को जब उठा सकते नहीं
ठोकरों से पैर की चलते हुये को मत गिराओ।

जीर्ण नौका धार में पडकर कभी जो डगमगाती,
आँधियों के सह थपेड़े जो किनारे को बुलाती,
साहसी माँझी तभी भयभीत हो यदि शक्ति खो दे,
क्रुद्ध सरिता मचल जाए बाढ़ की लहरें उठाती।

यदि नही पतवार बन कर खे सके नैया किसी की,
तो भंवर बन कर नहीं मंझधार में उसको डुबाओ।

मतलबी दुनिया बहुत यह स्वार्थी इंसान है,
दूसरों के दर्द की किसको यहां पहिचान है,
रहे अपना पात्र नित भर पूर मधु की धार से,
दूसरों की प्यास का किसको यहाँ अनुमान है।

तुम जला पाते नहीं स्नेह दे दीपक किसी का
ठीक है पर फूंक मे अपनी नहीं उसको बुझाओ।

रामदत्त शर्मा

जन्म स्थान—ग्राम बड़ेरी जिला भिण्ड । अन्तर महाविद्यालय भिण्ड में इन्टर तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात अध्यापन कार्य का उत्तरदायित्व आ पड़ा । विगत दो तीन साल से लिखने का प्रयास कर रहा हूं । इधर त्रिपाठी जी व पांडेय जी के संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिससे काव्य लिखने की पर्याप्त प्रेरणा मिली, दृष्टिकोण का निर्माण हुआ । साहित्य सृजनकी प्रथम सीढी पर चढ़ते हुये मैं क्या कहूं ? हाँ इतना अवश्य कि साहित्य साधना के लोककल्याणकारी पक्ष की ओर मैं अत्यधिक सतर्क हूँ । अपने देश, समाज को खुशहाल देखना चाहता हूँ, उसे पददलित सन्त्रस्त करने वालों के प्रति मेरा रोष कई रचनाओं में प्रकट हुआ है ।

नव-निर्माण के सपने लिये मेरी कविता ऐसे स्वर्णिम भविष्य का चित्र आँक रही है जो अभावों व विषमताओं से मुक्त है । आत्म-विश्वास का संबल लिये मेरे गीत तूफानों को ललकारते हुये बढ़ने के लिये प्रयत्नशील हैं । मेरी उग्रता व कठोरता बहुत कुछ मेरे इसी दृष्टि-कोण का प्रतिरूप है ।

अनुक्रमणिका

				पृष्ठ
१.	यदि युद्ध हुआ तो	....	....	६९
२.	सोने वाले जाग	....	....	७१
३.	जिन्दगी गीत	...	...	७३
४.	वरदान समझ कर जी लूंगा		....	७५

कली के मौन गीत को भ्रमर दुहराता है,
दीपक की जलती ज ति को स्नेह सहलाता है,
प्यार के रंगीन सपनो की सौगात लिये,
हृदय प्रदेश में आके कोई गुनगुनाता है

भँवर में पड़ी पतवार कभी पार छूजाती है,
राहों में भटकते को कभी मंजिल मिल जाती है
डरने वालों के लिये नहीं यह दुनिया बनाई गई
जो रुकते नहीं तूफानों में उन्हें जिन्दगी मिल जाती है

यदि युद्ध हुआ तो

यदि युद्ध हुआ तो युग युग की संचित सस्कृति का क्या होगा ?
यह मृदुल योजनाओं वाला मनु का प्रिय देश कहां होगा ?
जिस घर में ऊषा शरमाती संध्या बैठी दीवानी है,
तम के परदे में छिपी सिसकती रोती शेष जवानी है,
उस घर का वैभव शेष रहा, शमशान भूमि बन जायेगा,
तब मन की बात रहेगी मन में गीत नही बन पायेगा,
बस अरमानों के प्यालों में 'उद्जन' का रूप भरा होगा।
यदि युद्ध हुआ तो............... ?
ये छोटे छोटे राम, कृष्ण, ये छोटी छोटी बालायें,
मीना, द्रुपदा, झाँसीं वाली जो खेल रही हैं मीराएँ,
सिन्दूर भरा जीवन का घट मधुमास लिये अगडाता जो,
सम्पदा धरी रह जायेगी तब आंसू गान बहायेगा,
जो सोते हैं सो जायेंगे, मरघट फिर गीत उठायेगा,
ज्वाला में जलकर जीवन का शृंगार सभी धूमिल होगा।
यदि युद्ध हुआ तो ... . ?
युग की थाती पर खड़ा हुआ जो ताजमहल मुस्काता है,
कुरुक्षेत्र का महा समर गीता की याद दिलाता है,
ये ऐलौरा पर खिला हुआ संस्कृति का सुन्दर सुमन जहां,
उस हँसती हुई अजंता पर छिपता सुरपुर का सुमन जहां,
उस भोली भाली महामूर्ति से 'एटम' जब टकरायेगा,
जीवन पर होगी गैस घनी धरती पर तब लावा होगा।
यदि युद्ध हुआ तो .... ?

बंग भूमि से हँसती ऊषा काश्मीर तक जाती है,
सुरसरि की निर्मल लहरों में वह गीत गूंथती जाती है,
धरती से अम्बर तक लेकर ऊषा शृंगार रचाती है,
जिस धरती पर है गीत उठे मधुमास भूमि सरसाता है,
ले मशाल युग की डगरों पर जीवन नित्य बसाता है,
ये सारा व्यापार प्रकृति का जलती चिता बना होगा।

यदि युद्ध हुआ तो ....?

मुस्काती धरती पर कितनी क्रन्दन की अर्थियाँ लग चुकी,
कितनी पैंनी तलवारों के वार जिन्दगी वरण कर चुकी,
इसी लिये 'एटम' के घर से मौन निमन्त्रण आया है,
जीवन के स्वप्नों में फिर इन्सान सबेरा लाया है,
सजग पहरुआ महा देश सगोत एशिया लाया है,
ध्वंशों की छाती पर बस अब शान्ति गीत केवल होगा।

यदि युद्ध हुआ तो.............. ....?

नहीं अरे ओ दूर क्षितिज से महाशांति है झांक रही,
छोड़ चलो अब खूनी पथ को जीवन भिक्षा मांग रही,
देख चुके हम काली दुनियाँ आज शान्ति से नाता अपना,
ओ रण चण्डी के मतवालो ! छूने दो अब अपना सपना,
दूर हटाओ सारे ध्वसक, सोचो युद्ध नहीं होगा।
अब युद्ध नहीं होगा।

यदि युद्ध हुआ तो . ...?

सोने वाले जाग....

सोने वाले जाग कोई आवाज लगाता आता है।
जीत रही धरती पर कोई दीप जलाता आता है।
क्रन्दन की बस्ती में देखो,
ऊषा गाने वाली है।
मन्जिल तेरे स्वप्नों में,
वह मजिल आने वाली है।
तेरे ही सांसों के जग में,
गीत धरा ने गाये हैं।
हर प्राणों की अर्थी पर,
जीवन के दीप जलाये हैं।
इसीलिये अम्बर में कोई पंचम स्वर दुहराता है।
हर मौन दिसायें तेरा ही,
संगीत छेड़ती आतीं हैं।
आशाओं की कब्रों में,
पूजा के गीत उठातीं हैं।
उठ जाग तुम्हें कोई पूरब से,
कुंकुंममय संगीत सुनाता।
कोई दूर क्षितिज में देखो,
प्राणों की तस्वीर बनाता।
इसीलिये हर समय शबनमी बूंदों में अरमान नहाता आता है।

स्वप्नों के खण्डहर में देखो,
आशाओं के चित्र लग रहे ।
नई एशिया की मिट्टी में,
नये गीत के तार ढल रहे ।
देखो तो हर मौन कली पर,
मौन जिन्दगी मुस्काती ।
सोई रातें बुला रही है,
नये देश की नई प्रभाती ।
इसीलिये मिट्टी का पंछी नई जिन्दगी गाता है ।
प्राची का मुस्कान भरा नभ,
तुम्हे जगाने आया हैं ।
'एटम मौन खड़ा द्वार पर,
तुम्हे उठाने आया है ।
देखो तो हर क्यारी में,
धरती हरियाली लाई है ।
नई फसल की हर डाली पर,
कोयल गाने लाई है ।
इसीलिये तो हर पड़ाव संगीत उठाता आता है ।
सोने वाले जाग कोई आवाज लगाता आता है ।

जिंदगी गीत

लिये एक आशा निराशा के जग में तुम्हें मैं प्रभाती सुनाता रहूँगा ।
सुनो ना सुनो यह तुम्हारी है मर्जी पर गीता तुम्हारी मैं गाता रहूँगा ।

रात को यों गगन ले अमां का अंधेरा,
धरा और गगन को रहा चूमता ।
एक आशा लिए कीट लड़ता रहा,
दीप की गोद में वह सदा झूमता ।
पर सितारे नहीं रोक पाये उसे,
क्योंकि बाँधे सबेरे ने उनके चरण ।
यों निवासी सुमन का शलभ चाह से,
एक शहीदी शपथ को किये था वरण ।

मौत की राख ले पग धरे हैं चिता पर,
सदा जिन्दगी गीत गाता रहूँगा ।

मौत कीं आंधियों में पला बीज हूँ,
मनचाही जमीं मुझको मिलती रही ।
तुंग शृंगों ने उठते गिने हैं कदम,
भाल टेका चरण चूम विनती कही ।
सिन्धु ने हार मानी हमीं से सदा,
पूछ सकते हो सीलोन की राह से ।
वह रेखा हमारी खिचां हो रही,
शत्रु के पग नहीं बढ़ सके चाह से ।

फिर लिये अगु चले हो डराने मुझे,
मै सदा जिन्दगी गीत गाता रहूँगा।
मौत तो रोकती ही रही भूमि पर,
जिन्दगी तो सदा मे मचलती रही।
मन्जिलों को उठाये धरा को दबाये,
गगन में सदा गीत गाती रही।
आँधियाँ ले अगारे बढ़ी दूर से,
पर यहां नेत्र शंकर के खुलते रहे।
कौन हो तुम चले नापने पांव मेरे,
यहां नाप बलि के है थकते रहे।
नही याद तुमको वह गीता र्थ। मेरी,
सदा जिन्दगी को मै गाता रहूंगा।

सजा थाल ऊषा का हरदम तुम्हें,
कोई प्रभाती सन्देशा सुनाता रहा।
देकर सदा अर्घ्य आलोक का,
अंशुमाली सदा मुस्कराता रहा।
रात को चांद लेकर सितारों की दुनियां,
सुबह की डगर को बताता रहा।
धूप की डोर में बांध सपने निशा के,
सदा साँझ में भोर गाता रहा।
बस लिये एक उठती औ गिरती जवानी
सदा जिन्दगी को बुलाता रहूंगा।

वरदान समझ कर जी लूँगा

तुम कितने ही तूफानों में अगार सुलगते बरसाओ,
मैं उनको वरदान समझ कर जी लूंगा।
तुम कितने मधुप्यालों में हरदम विषघूंट भरो,
मैं उनको जीवनदान समझ कर पी लूँगा।
मैं तूफानों की पाग लिये, भूचालों पर चल आया हूं।
मैं लिये हाथ में मौत, जिन्दगी का परचम ले आया हूं।
मैं वह आसव हरदम पीता हूँ, जिसको शहीद पी मुस्काते।
मै उन गीतों का गायक हूं, जो अधरों पर शरमा जाते।
मै फल धूल का खिला हुआ, इंसान बनाकर छोड़ूंगा।
तुम कितने ही तूफानों में.......... ....?
मै महा तिमिर का चीर फाडने वाला सूरज,
उदयाचल से चला अस्त कब होने वाला ?
मेरे बढ़ते कदम रुके कब पूछो हिमगिरि से,
मै घोर हलाहल शंकर सा पीने वाला।
मेरी आँखे महा प्रलय की चिनगारी के तीर दबाये।
हर सांस चूमती कफन मौत का अन्तर म ज्वाला सुलगाये
फिर तुम कितने ही अरमानों पर आँसू के सावन बरसाओ।
मैं बहार के गीत उसी में गा लूंगा।
तुम कितने आशा दीप बुझाओगे पथ पर,
मैं गीतों के दीप जलाकर जी लूंगा।
तुम कितने ही तूफानों में.......... ... .?

मै जब हंसता हूँ कि धरा तब मौन हंसी दिखला देती।
मैं जब रोता हूं कि धरा पतझर के गान उठा देती।
मेरी एक एक कण में तुम देखो अमिट निशानी है।
धरती के ऊपर अम्बर के नीचे लिखो कहानी है।
मै जब कदम उठाता हूँ ब्रह्माण्ड स्वयं बढ़ जाता है।
डाल डाल पर तब बसंत जीवन की गंध लुटाता है।
इसीलिये तुम कितने ही 'अणु' के व्यवधान करो,
मैं महा शान्ति का दूत कपोती पालूंगा।
तुम कितने दर्दीले शूल बिछाओगे पथ पर,
मैं फूलों का हार समझ कर जी लूंगा।
तुम कितने ही तूफानों में..........................।

मैं मरघट में पला जिन्दगी का कण हूं।
मै पतझर में खिला बहारों का क्षण हूँ।
मैं जब आँख उठाता हूँ तब धरा प्रभाती गाती है।
मैं जब हाथ लगाता हूं तब चट्टानें मुस्काती हैं,
दुनियां क्या रोकेगी मुझको मैं नित बढ़ता आया हूं।
पाषाण हृदय क्या रोकेंगे मैं स्रोत फोड़ कर आया हूं।
इसीलिये मैं हर कोरस का गीत बदलता आता हूं।
मुरझाये स्वप्नों को मैं साकार बनाता आता हूं।
तुम कितनी ही सांसों को पथ पर ठुकराओ।
मै पथ की साधना समझ कर जीलूंगा।

तुस कितने ही तूफानों में......................।

भँवर श्रीमाली

भारती के मंदिर में जहाँ अनेक ख्यातनामा साधकों का समारोह हो एक अज्ञात एवं सामान्य साधक का प्रवेश शायद ही किसी का ध्यान आकर्षित करे। फिर भी साधना का अधिकार तो सभी को है, यही सोच कर इस प्रकार का साहस कर रहा हूँ।

मेरी समझ में साधना से ही साधक का मूल्य निर्धारित होता है, अतएव मैं अपना कोई विस्तृत परिचय देना अनावश्यक समझता हूँ। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि मै राजस्थान में उदयपुर नगर का रहने वाला हूँ, और आजकल भिंड अन्तर महाविद्यालय में अंग्रेजी का अध्यापन करता हूँ।

बाल्यकाल से ही साहित्य के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि रही है, और समय समय पर लिखने का भी प्रयास करता रहा हूँ।

विद्यार्थी जीवन में काव्य के प्रति विशेष झुकाव रहने के कारण कभी कभी अपनी भावनाओं को छंदों में बाँध लिया करता था। काफी समय से यह छूट सा गया था, किन्तु पिछले कुछ दिनों से यह प्रवृत्ति जागृत हुई है, और इस प्रकार पुनः कुछ लिखने लगा हूँ।

इस पुस्तक मे मेरी कुछ रचनाएँ हैं। विकास के सिद्धांत में विश्वास होने के कारण यह नहीं कहता कि जो कुछ मैं सोचता हूँ वही सही और अन्तिम है। मनुष्य हर कदम पर कुछ न कुछ सीखता है और आवश्यकतानुसार अपने विचारों में परिवर्तन तथा परिवर्धन करता है। ऐसी अवस्था में मैं दूसरों को कोई संदेश देने की स्थिति में नही हूँ। केवल अपने भावों व विचारों को समाज के सम्मुख विनम्रतापूर्वक उपस्थित करना ही अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत रचनाएँ ऐसा ही एक प्रयास हैं।

अनुक्रमणिका

			पृष्ठ
१. सुबह की हवा	....	....	७६
२. वीरवन्दना	....	....	८१
३. कंठ मिला गाऊँगा	....	....	८६
४. पथ के पाषाण	....	..	८९
५. धरती का विश्वास	...	....	९१
६. गायक से	....	....	९४

सुबह की हवा

हर दल ने गाया गीत चेतना का
जब हवा सुबह की बगिया में आई।

पलकों की सेजें छोड़ चले सपने,
नभ ने अपने सब सुमन समेट लिये,
निंदिया ने दूर किया अपना जादू,
दीपों ने निज आराधन बन्द किये,
घुल गया धूल में तम का तन काला,
जब प्रभा हँस पड़ी लेकर अंगड़ाई।

कलियाँ जागीं धोकर अपनी अँखियाँ,
अलियों ने मधु का ऊषापान किया,
नव किरणों में हर लता नहा आई,
नलिनी ने पूजा का सामान लिया,
जग पड़ा कुंज का कोना कोना जब
अमराई में सहगान लहर छाई।

बछड़ों की भूखें मचल पड़ी तब ही
जब रँभा उठी गायों की वत्सलता,
जब मठा बिलौने की धुकधूम सुनी
बच्चों की जागी सहसा विह्वलता,
उछला उमंग से यौवन का मटका
पनघट पर ज्योंही सखियाँ चिल्लाईं।

खेतो में मक्का झूम झूम गाती,
बलखातीं ज्वारें हँस हँस इठलातीं,
गाता मलार बजरी के बीच मचान,
धानों पर झूली विहगी किलकाती,
नर्तन करने लगता उन्मत्त मयूर
जब मदमाती घनमाला नभ छाई।

जब जब धरती पर है बसन्त बगरा
कोकिल का खूब खुला संगीत बहा,
जब जब लहरों से मिला निमंत्रण तो
माँझी ने मँझधारों को दिया छका,
मानव ने हर बाधा को ललकारा,
जब जब हिमगिरि से आवाजें आईं।

हर दल ने गाया गीत चेतना का,
जब हवा सुबह की बगिया में आई।

वीरवन्दना

आजादी के अरुणोदय में हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

पृथ्वीपति ! जब भी कौंध रहा
अरिदलमर्दक वह खड्ग चण्ड,
कब्र में पड़ा गजनी अब भी
नही भूल सका वह लक्ष्यखण्ड ।

ओ चन्द ! तुम्हारा वरद काव्य
कानों में अब भी गूँज रहा,
पाकर जिसका संकेत वीर का
तीर शत्रुसिर खोज रहा ।

पर कसक रहा रह रह करके
स्वातन्त्र्य सूर्य का अस्तकाल !
है किन्तु नियति का यह विधान–
डूबता उगा जो रश्मिजाल ।

थी निसन्देह वह घडी बुरी,
समृद्ध देश का गतिविराम,
पर शौर्य आत्मबलि वह निहार
था सिहर उठा यह धराधाम ।

आजादी के में अरुणोदय हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

भारत के गौरवरूप रत्न
अकबर की सभा सजाये थे,
चातुर्य, शौर्य, संगीत, कला,
निज आन बान बिसराये थे ।

इस आर्यभूमि का स्वाभिमान
सत्ता के चरण दबाता था,
वह पतननिशा का प्रथम प्रहर
कैसा सबको ललचाता था !

उस समय राष्ट्र का वह प्रहरी
था जाग रहा दुर्दान्त जयी,
जिसकी स्वतन्त्र ललकारों से
अकबर की नींद हराम हुई ।

भारत के गौरव औ प्रताप,
औ देशभक्त भामा महान,
स्वाधीन मानवी संस्कृति के
तुम बने अटल अनुपम निशान ।

आजादी के अरुणोदय में हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

वह पतननिशा का मध्यकाल !
था देश विलासों में निमग्न ।
सहसा कैसी आवाज हुई ?
हो गया अचानक स्वप्न भंग !

बीजापुर का वह शिवा शेर
वन पर्वत मध्य दहाड़ उठा,
औरंगजेब को चौंका कर
अफ़ज़ल का सीना फाड़ उठा ।

वह छत्रसाल का तेग चण्ड
रिपुओं के उर को साल उठा,
भूषण के शौर्यभरे स्वर में
सहसा मानों भूचाल उठा ।

तममय निशीथ की वह हलचल !
हडबड़ा उठा सुप्ताभिमान–
बन्दी विलास से अच्छा है
स्वाधीन अभावों का विधान ।

आजादी के अरुणोदय में हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

इतिहास मुड़ा, सत्ता बदली,
फैलाया जाल फिरंगी ने,
मुगलों की तेग उठाते थे
उनने पकड़ी अब संगीनें ।

भारतीय भू का वैभव अब
चल पड़ा समुद्री यात्रा पर,
दिल्ली की सोने की चिड़िया
मँडराई लन्दन पर जाकर ।

शिक्षा बदली, दीक्षा बदली,
बदले विचार, व्यवहार सभी,
इस पुण्यभूमि की आन बान
अवशेष रही थी किन्तु अभी–

झाँसी में सहसा भड़क उठा
वह देशप्रेम का खर कृशानु,
लक्ष्मी की असि ने चमक कहा—
है दूर नहीं स्वाधीन भानु ।

आजादी के अरुणोदय में हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

ढल गई निशा, बोल मयूर,
सहसा सब कोने सिहर उठे,
तम में बेसुध से पड़े देश के
भाव अचानक मचल उठे ।

जागृति का नव सन्देश लिये
आये दादा, गोपाल, पाल,
जग उठे भगत, आजाद, बोस,
कर शंखनाद बढ़ गये बाल ।

देदीप्यमान नक्षत्र महात्मा
गाँधी पथ-आलोक बना,
चल पड़े मानवी मन्दिर को
सरदार, जवाहर, महामना ।

पौ फटी, धरा मुस्करा पड़ी,
तक उठा पूर्व से भासमान,
अगणित नरनारी ने बलि दे,
रँग दिया देश का आसमान ।

आजादी के अरुणोदय में हे वीर ! तुम्हें शत शत प्रणाम ।

गाती प्रभातियाँ सरिताएँ,
हिमगिरि फहराता है तिरंग,
नभ दुहराता है विजयघोष,
है पवन उड़ाता राग रंग।

है मोदपूर्ण साकेत नगर :
लंका से लौटे राम आज।
मथुरा के मन को मिला चैन :
मर गया कंस, आया सुराज।

वह वैशाली उल्लासपूर्ण :
मिल गया उसे है महवीर।
सिद्धार्थ स्वयंवर से लौटे :
है कपिलवस्तु का मन अधीर।

पाटलीपुत्र मन में अशोक,
उज्जयिनी विक्रमयुत ललाम,
वह इन्द्रप्रस्थ मुस्करा उठा
ले धर्मराज का पुण्यनाम।

आजादी के अरुणोदय में हे वीर! तुम्हें शत शत प्रणाम।

कंठ मिला गाऊँगा

तुम अपना अपना राग अलापो, मैं तो
सबके कंठों में कंठ मिला गाऊँगा।

कुछ को कोकिल का पंचम ही रुचता है,
कुछ बुलबुल की बोली पर हुए निछावर,
कुछ को करती आकर्षित मत्त मयूरी,
कुछ को भाता उन्मत्त कपोती का स्वर,
कूछ के मन लवा समाई है, पर मैं तो
सबकी सरगम का सार लिये जाऊँगा।

कुछ कमलों की कोमलता को सहलाते,
कुछ पाटल की ही पंखुड़िया दुलराते,
कुछ को लगती है अच्छी अधिक चमेली,
कुछ को केवल गेंदे ही गेंदे भाते,
कुछ जूही का शृंगार करें, पर मैं तो
इन सबका ही उपहार लिये जाऊँगा।

कुछ को मधुऋतु कीं मादकता से ममता,
कुछ को निदाघ का तपन मधुर लगता है,
कुछ बरसा की बूंदों में बन्द बने हैं,
कुछ का पतझर से प्यार पला करता है,
कुछ सरदी में सीमित से हैं, पर मैं तो
इन सब की ही मनुहार लिये जाऊँगा।

कुछ को पहाड़ का शृंग सदा ललचाता,
कुछ घाटी में अलमस्त बने रहते हैं,
कुछ को मैदानों की बिछात भाती हैं,
कुछ सागर की लहरों पर ही बहते हैं,
कुछ को मरुथल ही प्यारा है, पर मैं तो
इन सबका ही अभिमान लिये जाऊँगा।

कुछ पूरब की अरुणाई मे अनुरंजित,
कुछ पश्चिम की वरुणाई में खोये हैं,
कुछ उत्तर के ओलों की करते पूजा,
कुछ दक्षिण के दामन में ही सोये हैं,
कुछ ऊपर ही ऊपर अटके, पर मैं तो
इन सब के ही अरमान लिये जाऊँगा।

कुछ केवल नभयानों के हैं आराधक,
कुछ को मोटर की सरसर अधिक सुहाती,
कुछ सायीकल के हैं अनन्य आराधी,
कुछ को ट्रेनों की छकपक नित्य लुभाती,
कुछ गाड़ी में ही रमे हुये, पर मैं तो
इन सब का ही अभिसार लिये जाऊँगा।

कुछ को अतीत का गौरव घेरे रहता,
कुछ वर्तमान में हीं भूले से बहते,
कुछ को भविष्य का भूत सदैव सताता,
कुछ सपनों का संसार बसा कर रहते,

कुछ हारे हुये सभी से है, पर मै तो
इन सबका ही अनुमान लिये जाऊँगा ।

कुछ राम कृष्ण की ही गाथा को गाते,
कुछ बुद्धदेव के हैं अनन्य आराधक,
कुछ ईमा ही ईसा की रटन लगाते,
कुछ मक्का के पैगम्बर के हैं साधक,
कुछ गाँधी की माला जपते, पर मै तो
इन सब के ही उपकार लिये जाऊँगा ।

कुछ भारत भारत का ही गीत सुनाते,
कुछ कहते जिन्दाबाद रहे यह जर्मन,
कुछ कहते अमरीका का वैभव हो नव,
कुछ कहते लहरों का शासक है ब्रीटन,
कुछ कहते हैं हो रूस अमर, पर मैं तो
इस धरणी के गुणगान किये जाऊँगा ।

तुम अपना अपना राग अलापो, मैं तो
सब के कंठों में कंठ मिला गाऊँगा ।

पथ के पाषाण

मै सदा पाषाण पथ के पूजता हूँ।

सामने के क्षितिज ने हरदम पुकारा,
किन्तु माँझी ने उसे केवल सुना है।
दूर की वह कल्पना सबको लुभाती,
किन्तु साहस ने उसे केवल गुना है।
जो तरी मचली धरा का छोर छूने,
छोड़ तट की गोद पथ पर चल पड़ी है
भूझती मँझधार से, उसकी कहानी
सिंधु की हर लहर में सिमटी पड़ी है।
आज झंझा के झकोरों की तड़फ में
जो छिपे अरमान उनको बूझता हूँ।

शून्य में हिमगिरि निरन्तर ताकता सा
युग युगों से मौन निर्जन में खड़ा है;
कर रहा है किसी प्रियतम की प्रतीक्षा,
झेलता आघात अगणित यह अड़ा है।

व्योमपथ पर है भटकती नित्य बदली,
खो गया कोई उसी को ढूँढती है।
छू हिमालय के हृदय को फूट पड़ती:
एक विरहिन ही व्यथा को जानती है।
हर भटकती आँख की बेचैन पलकें
देख अपनी व्यथा भूल पसीजता हूँ।

हर थपेड़े का प्रबल आघात सहते
जिंदगी की राह पर जो बढ़ रहे हैं,
मन्दिरों के देव क्या उनकी व्यथा वह
जानते हैं जो कि वे नित सह रहे हैं?
पंथ का पाषाण ही है एक बस जो
हर कदम की क्लांति को पहचानता है:
ठोकरें खाता वही तो ठोकरों की
चोट को अपने हृदय में जानता है।
वह कसौटी हर कदम की है, इसी से
गिर संभलता हूँ, न पर मैं खीझता हूँ।

मैं सदा पाषाण पथ के पूजता हूँ।

धरती का विश्वास

हर कोने से आतीं आवाज बराबर,
केवल धरती का ही विश्वास करो।

किसने जड़ कण के कुंठित प्राण जगाये ?
किसने दुलार से सहलाया अंकुर को ?
किसने पौधों में भरी तरुण चंचलता ?
गुदगुदा दिया किसने बालों के उर को ?
गिरते तन को किसने आधार दिया है ?
रोते कण को किसने पुचकार लिया है ?
उत्तर आता, है केवल इस धरती ने।
इसलिए सदा धरती से आस करो।

किसने अंडे को दिया नीड़ का आश्रय ?
किसने अबोध शैशव को है दुलराया ?
किसने किशोर प्राणों की क्षमता पोषी ?
किसने कुमार पंखों को सबल बनाया ?
किसने पंछी को गति का दान दिया है ?
हारे को किसने जीता मान लिया है ?
उत्तर आता है, केवल इस धरती ने,
इसलिए सदा धरती पर वास करो।

सूनेपन में किसने उल्लास बिखेरा ?
किसने जागृत कर दी चेतनता सोई ?
किसने जल थल नभ में नित प्राण पसारे ?
किसने झंखाड़ों में हरियाली बोई ?
किसने पद में अव्याहत चाल भरी है ?
किसने पथ की बेचैन थकान हरी है ?
उत्तर आता है, केवल इस धरती ने ।
इसलिए न धरती का निर्वास करो ।

किसने सहस्र प्राणों के बीज बिखेरे ?
किसने हर क्षमता को सीने में पाला ?
किसने अनेक रस के निर्झर झलकाये ?
किसने रंगीनी को मिट्टी में ढाला ?
किसने जड़ता में जीवित श्वाँस भरी है ?
किसने हर अणु में शीतल आग धरी है ?
उत्तर आता है, केवल इस धरती ने ;
इसलिए न क्यों उर में उल्लास भरो ?

धरती के हर कण में अनन्त जीवन है
हर कोने में निधियाँ अगाध सिमटी हैं!

इस मिट्टी मे असंख्य ईसा सोये हैं,
इस में नव नव शक्तियाँ सदा प्रकटी हैं।
इसमें अपार सुख के सामान भरे हैं,
इस पर अमोघ उपचार पड़े बिखरे है
इसमें ही मानव का उद्धार निहित है;
इसलिए न धरती का परिहास करो।

उठ देखो, इस धरती के हर कोने में
हर ज़र्रा अपने सपने धोया करता,
हर लहर जिन्दगी के गाने गाती है,
हर पंछी अपनी मन्जिल पाया करता।
धरती से ही भगवान जगा करता है,
धरती से ही इन्सान उठा करता है,
धरती का ही आधार सदा तुमको है;
इसलिए न तुम मिथ्या बकवास करो।

मत ताको चाँद सितारों को मेरे मन,
उनको न किसी पीड़ा से हमदर्दी है;
न आया कोई आसमान से अब तक,
चाहे धरती पर गर्मी या शर्दी है,
धरती पर ही तुमको नन्दन लाना है,
धरती के ही गीतों को नित गाना है,
धरती का ही उपकार सदा तुम पर है;
इसलिए न तुम नभ में आवास करो।

गायक से

तुम अपने ही गीतों में खोये साथी,
मैं कण कण में संगीत सुना करता हूँ।

जब हवा चेतना को छू जाती सहसा
तन्त्री का हर तार मचलने लगता,
जब भौंरा करता प्यारभरी गुनगुन तो
हर कलिका का आमोद उभरने लगता,
जब कुन्जों में बौरों की महक छलकतीं
हर कोयल का अवरुद्ध कंठ खुल पड़ता,
जब धरा और नभ खुलकर फाग मनाते
मैं भी हँस हँस आनन्द लिया करता हूँ।

गिरि के सीने को सरिता सहलाती तो
हर पत्थर के अरमान उछल पड़ते हैं,
जब आँखमिचौनी आँगन में होती तो
नभ के सूने से पलक छलक पड़ते हैं,
जब सावन के बादल मलार हैं गाते
आंचल के सारे छोर सिहर उठते हैं,
जब नयनों की नयनों से बातें होतीं
मैं खुशियों का वरदान दिया करता हूँ।

जब सूरज की किरणें धरती पर आतीं
हर कण उसका हँस कर स्वागत करता है,
जब हल की नोक गुदगुदी पैदा करती
हर रज का उर्वर वक्ष उभर आता है,
जब नीड़ छोड़कर उड़ता नभ में पंछी
हर पवन पंख उसके सहला जाता हैं,
जब तरी मचल पड़ती सागर के तट पर
मँझधारों का विश्वास दिया करता हूँ।

लहरों के हर उर में नव तानें सोईं,
तरुओं का हर पत्ता रहस्य दुहराता,
हर दाने में है भरा प्राण का आसव,
धरती का हर जर्रा बल को दुलराता,
हर बूंद सिन्धु की क्षमता पोषित करती,
हर बीज वृक्ष को गोदी में सहलाता,
तुमने अब तक पूजे पहाड़ हों चाहे
मैं हर अणु का शृंगार किया करता हूँ।

झुरमुट में बुलबुल गीत सुधारा करती,
मिजरावों का हर स्पर्ष माँजता तानें,
हर झोंका लहरों को संगीत सिखाता,
हर बूंद कली के धोती रहती गानें,

हर सिकता से सरिता का गान निखरता,
हर श्वाँस सँवारा करती नित्य तराने,
हर कदम साधता है सरगम, इससे सब
गाने वालों को दाद दिया करता हूँ ।

माना तुम अच्छा गा लेते हो साथी,
पर इस कारण अभिमान न कर इतराओ,
तुम हो कवि, पर कविता न बपौती होती,
समझे हो कुछ तो हमको भी समझाओ,
जो सीख रहे हैं उनको भी गाने दो;
तुम जो चाहो सो कहो और ठुकराओ,
कविता न कभी तुमसे बाँधे बँधती, मैं
हर दिल की धड़कन को कविता कहता हूँ ।

तुम अपने ही गीतों में खोये साथी,
मैं कण कण में संगीत सुना करता हूँ ।

राजबहादुर 'पद्म'

एम० ए० [पूर्वार्द्ध] 'साहित्यरत्न' [हिन्दी], 'विज्ञानरत्न' [कृषि]
'सिद्धान्त-भास्कर' [वैदिक साहित्य]

मेरा जन्म नाहिली (मैनपुरी उ० प्र०) की शस्य-श्यामला भूमि में ठा० तेजसिंह चौहान के यहाँ सन १६२८ ई० मे हुआ। मै पूर्व में 'आर्य' नाम से प्रसिद्ध था किन्तु बाद में मैंने यह शब्द अपने नाम से बहिष्कृत कर दिया। प्रारम्भिक शिक्षा गांव में, तदुपरान्त घिरोर व सिरसागंज मे हुई। नारायण कॉलेज शिकोहाबाद (उ० प्र०) से 'इंटर' करके, सेन्ट जान्स कालेज आगरा का छात्र रहा। सन् '४८ में कुँवर परमालसिंह, फारेस्ट्स कंजरवेटर के यहां वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने के पश्चात ग्वालियर रहने लगा। तब से शिक्षा विभाग मध्यभारत के अन्तर्गत अध्यापन कार्य कर रहा हूँ।

मेरी पूर्व की रचनाएँ आर्य समाजी विचार-धारा से प्रभावित हैं। सन्' ४२ के आन्दोलन ने मेरी रचनाओं को प्रौढ़ता के साथ एक एक नवीन मोड़ दी। उस समय की रचनाओं में 'नीरव निशा' 'रण भेरी' 'सुभाष सन्देश' ने जनता में आदर पाया। स्वतन्त्र भारत में प्रगतिवाद' की ओर विशिष्ट झुकाव होने से, 'अंगारों पर' 'धनिकों से' 'दीप को' आदि रचनाओं ने जन रुचि के घावों को सहलाया। इसी समय मैंने गीति-पद्धति में विविध एवं नवीनतम प्रयोग किए, उसमें संगीत की पुट देकर माधुर्य की वृद्धि की। मेरी गीत पढ़ने की कला ने मुझे और सहारा दिया जिससे मैं 'मध्यभारत' के साथ ही 'उत्तर प्रदेश' के गीतकारों में समुचित स्थान प्राप्त कर सका।

सन् '४६ से श्रद्धेय गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने मेरे गीतों का 'सुकवि' (मासिक) में नियमित प्रकाशन करके, समीचीन मूल्यांकन किया। '४६ में उनके संयोजकत्व में होने वाले अ० भा० कवि-सम्मेलन

कानपुर के समय मैंने मध्यभारत का सफल प्रतिनिधित्व किया। विद्यार्थी काल (सन् ४७-४८) मे अ० भा० कुमार हिन्दी साहित्य सम्मेलन जोधपुर का उत्तर प्रदेश की ओर से प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ तथा मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ग्वालियर में, भिण्ड जिले के प्रतिनिधि एवं सम्मेलन की कार्यकारिणी के सदस्य रूप में कार्य सम्पन्न किया। मुरार की 'हिन्दी साहित्य सभा' एवं 'नाट्य कला परिषद्' के मन्त्रित्व तथा भिण्ड हि० सा० सभा के सहायक मन्त्री पद का भी पूर्ण उत्तरदायित्व से निर्वाह किया है।

अपने ग्राम के आर्य समाज-विरोधी तत्वों ने मुझे तुकबन्दी करने का अवसर दिया, जो सातवी कक्षा के हिन्दी-अध्यापक द्वारा पूर्ण निर्दोष प्रमाणित होने पर, मेरे प्रोत्साहन की आधार-शिला बनी। मैं क्रमशः स्कूल व कालेजो की स्थानीय एवं अन्तप्रान्तीय काव्य प्रतियोगिताओं में सदैव विजयी होता रहा। विविध पत्र-पत्रिकाओं में रचना-प्रकाशन के साथ ही 'बापू स्मृति ग्रंथ' में भी मुझे स्थान मिला, पश्चात मेरे गीतों के ग्रामोफोन-रिकार्ड भी बन गए। 'माँझी' (उपन्यास) एवं 'कचुकी' (कहानी सग्रह) के साथ हीमेरा प्रथम गीत सँग्रह 'झकोरे' तथा अन्य कविताओं का संकलन 'पीयूष' नाम से सन् '४६ में प्रकाशनार्थ प्रस्तुत थे, किन्तु किन्ही विशेष परिस्थितियों के व्याघात ने अपेक्षित मन्तव्य का संस्पर्श न करने दिया। प्रस्तुत संग्रह में आपकी रुचि के कुछ गीत ही ग्रथित हैं।

किन्तु:—"ये गीत बताएँगे--कितना गौरव है उनके साथ में ?
जब यह कृति, कवि के हाथों से पहुँचेगी जन के हाथ में ॥"

इत्यलम्

(कृषि-विभाग) अध्यापन विद्यापीठ भिण्ड
दि० २२-४-५६

विनयावनत्
'पद्म'

जब तक दीखे चाँद....

जबतक दीखे चाँद कि समझो पूनम है ।।

काली-काली घटा नही उजियाली है ।
यौवन की मादकता जिसमें ढाली है ।
आज युगों के बाद, चाँद के दर्शन से,
मन की व्यथा न घटने, बढ़ने वाली है ।
व्याकुल उर की बात हृदय से तो पूछो—
हर पहलू पर मौन सिसकती शबनम है ।
जब तक दीखे चाँद कि समझो पूनम है ।।

तुमने कहा कि "कल पड़वा का दिन होगा,
अस्तु उक्त तिथि पर अवरुद्ध गमन होगा ।
यह पौराणिक कथा भला मानूँ कैसे ?
पर न मानने से भी भारी मन होगा ।
इसीलिए सावन के अलसाए क्षण में—
तुम्हें छोड़ जाने में भी, क्या कम गम है ?
जब तक दीखे चाँद कि समझो पूनम है ।।

आज प्रकृति भी रोक नही सकती पथ को ।
आज न कोई 'इति' दे सकता इस 'अथ' को ।
ऊपर चाँद स्वर्ग का स्वर्णिम नथ पहने,
इधर भूल सकता—क्या कोई इस नथ को ?
किन्तु- सुबह तक सबका फीका रंग होगा—
यह तो केवल जीवन का, भ्रम ही भ्रम है ।
जब तक दीखे चाँद कि समझो पूनम है ।।

वह दिन

वह दिन मुझे बहुत खलता है !!
जब मेरे मानस का दीपक, बुझता है - बुझ-बुझ जलता है।
वह दिन मुझे बहुत खलता है।।

[१]

हम अपने कन्धों के बल पर, युग का भार सम्हाल ले गए।
जग चिल्लाता रहा किन्तु, तो भी नौका को पार ले गए।
अब क्या लहर और ये सागर, मचल-मचल थिरकते-उमगते--
मेरा हृदय नहीं, जब उनकी बातों पर रोता-हँसता है।
वह दिन मुझे बहुत खलता है।

[२]

क्यों मुस्काया, क्या मुस्काने का परिणाम कभी सोचा था ?
यौवन की संकुचित बीथियों से, क्या त्राण कभी सोचा था ?
पर यह प्रणय-राग जीवन के, कालकूट हैं, कभी अमृत हैं।
शलभ इसी से दीप-ज्योति पर, पी अमरत्व भेंट चढ़ता है।
वह दिन मुझे बहुत खलता है।।

[३]

चन्द्र-मयूखों ने सागर में, भीषण ज्वार उठा रक्खा है।
मर्यादा के भीतर रहने पर, प्रतिबन्ध लगा रक्खा है।
पथ-दर्शक बनकर ध्रुवतारे, एक नहीं अगणित हो जाते--
तब उस मन्जिल पर नेत्रों का, नीर नहीं बिल्कुल ढलता है।
वह दिन मुझे बहुत खलता है।।

गिरा मैं नहीं हूं....

गिरा मैं नही हूँ, गिराया गया हूँ ॥

बढ़ी जारही कामनाएँ हमारी,
विफल हो रही साधनाएँ हमारी।
बढा गति-चरण, रुक गया आज सहसा;
रुका मै नही हूँ, रुकाया गया हूँ
गिरा मै नहो हूँ, गिराया गया हूँ !!

चढ़ाता रहा, जग सदा रंग अपना,
नही हो सका पूर्ण मेरा कलपन ।
हुए भग सपने, उदासीनता मे;
मै रोया नही हूँ, रुलाया गया हूँ !
गिरा मै नही हूँ गिराया गया हूँ !!

प्रकट कोप है आज भी बाम विधि का,
नही पासका पार जीवन-जलधि का ।
कि पतवार से हीन, मँझधार में भी--
बहा मैं नहीं हूँ, बहाया गया हूँ ।
गिरा मैं नही हूँ, गिराया गया हूँ !!

कहूँ क्या--कि संसार से हार बैठा ?
समझलूँ - किसी से कि कर प्यार बैठा ?
नहीं कुछ समन्वित मेरी धारणाएँ--
मैं भूला नहीं हूँ, भुलाया गया हूँ !
गिरा मैं नहीं हूँ, गिराया गया हूँ !

कैसे कह दूं

कैसे कहदूं यह कि किसी से आज हमारा प्यार होगया !!

क्षण भर की मुस्कान किसी की, प्राणों पर अभिशाप बन गई !
निर्निमेष में ही सहसा, दिल में कोई तस्वीर खिंच गई !
पर संकेतों की भाषा को, जान नहीं अब तक पाया हूँ—
कैसे कहदूं यह कि किसी के प्राणों पर अधिकार हो गया ?

कैसे कहदूं यह कि किसी से…… .. …. .. …………

जब चन्द्रिका-धवल सुषमा को, नीले पट ने छिपा न पाया !
जब कि वसन्ती मलय-पवन ने, हृदय-कुसुम गुदगुदा हँसाया !
उठे हुए अदृष्ट दिशा में, नैन झुके के झुके रह गए--
मै तब भी पहिचान न पाया, यह कैसा खिलवार होगया ?

कैसे कहदूं यह कि किसी से…… … ……………

नींद नहीं पलकों में अबतो, चित्र किसी के दिखलाते है।
तकते-तकते राह गगन में, जबकि नयन यह थक जाते हैं।
तब विस्मृति के झकझोरों में, डाल किसी को यदि सो पाया—
प्रातः उठ बैठा तो देखा, सपनों का संहार हो गया ॥

कैसे कहदूं यह कि किसी से आज हमारा प्यार हो गया ॥

मैंने मन पाया

मैंने मन पाया, पर मन का अनुमान नहीं पाया
अनुमान नहीं पाया !!

हम समझे थे, नही उदधि में गहराई होती है।
हम समझे थे, नही प्रेम में निठुराई होती है।
ठोकर खाता रहा–किन्तु पाषाण नहीं पाया,
अनुमान नही पाया !! मैंने मन पाया ..
पतझड़ आया है, वसन्त का मौसम बीत चुका है।
आज कोई मेरे मन की नीरवता जीत चुका है।
मै हारा, किन्तु विजय का अनुसंधान नहीं पाया,
अनुमान नहीं पाया !! मैने मन पाया ......
माँझी ! अब तो तूफानोंका, चिन्ता करना निष्फल है।
अब तो अँधियारे में, नौका बढ़ने दो, धार प्रबल है।
कबसे नापी मंजिल, पर स्वर्ण विहान नहीं पाया,
अनुमान नहीं पाया !! मैने मन पाया.... ...
अब किस आशा में, चकोर के नेत्र निहार रहे हैं ?
चलो तुम्हें तो वह जलते, अँगार पुकार रहे हैं।
डाली नभ की आँखों में आँखें, त्राण नहीं पाया,
अनुमान नहीं पाया !! मैने मन पाया ....
दीप जला था एक खण्डहर, चम-चम चमक उठाथा।
और तभी कोई दृढ़ स्नेही, उसमें कूद पड़ा था।
जला पतंग किन्तु स्नेह–रस–पान नहीं पाया,
अनुमान नहीं पाया !! मैंनेमन पाया ..

तुमने

प्राण को पतवार दी तुमने ।
प्राण को मँझधार दी तुमने ॥

मन दिया, औ' मन–मिलन की बात भी,
जिन्दगी का तप दिया औ' साध भी,

प्यार में दी हार भी तुमने ।
प्राण को पतवार दी तुमने ॥ १ ॥

चल रहा राही जगत में झूमता,
हर पथिक है पंथ के पग चूमता,

वेग में हुंकार दी तुमने ।
प्राण को पतवार दी तुमने ॥ २ ॥

गीत गाती है जवानी प्यार के,
हैं तृषित कितने शलभ के द्वार के,

मृत्यु को खिलवार दी तुमने,
प्राण को पतवार दी तुमने ॥ ३ ॥

चाँद निकला है, चकोरी हँस रही
प्रीति की गागर कि छलकी पड़ रही,

वीन में झंकार दी तुमने ।
प्राण को पतवार दी तुमने ॥ ४ ॥

गीत गाना बहुत चाहा....

गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ।
सुख मनाना बहुत चाहा, सुख मना भी न पाया ॥
दूर झिलमिलाता सितारा,
कर रहा था यह इशारा—
पास मंजिल है, डगर है,
आगया अब तो किनारा ।

पग बढ़ाना बहुत चाहा, पग बढ़ा भी न पाया ।
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥
फूल चुन कर शूल आए,
गर्व मे मस्तक उठाए,
क्या खबर—उनके भी कोई,
आँख में सपने बसाए ।

नींद लाना बहुत चाहा, नींद ला भी न पाया ।
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥
जिन्दगी की होड़ आगे,
भागने को बहुत भागे,
किन्तु पग के पत्थरों से,
हारते बाजी अभागे ।

जीत पाना बहुत चाहा, जीत पा भी न पाया ।
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥

वह अधर की पूर्णमासी,
आज मावस की उदासी।
दर्द का छाया कुहासा,
देख कर शक्लें रुआसीं ।
मुस्कराना बहुत चाहा, मुस्करा भी न पाया ।
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥

एक झंझावात टूटा,
प्राण का धैर्य छूटा।
झूठ सम्बल हो गए सब,
आ नियति ने खूब लूटा।
मन बचाना बहुत चाहा, मन बचा भी न पाया।
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥
मुश्किलातें खिलखिलाईं,
दल-बदल के साथ आईं।
वेग पर होगईं हावी,
नाश का सन्देश लाईं ।

जग बसाना बहुत चाहा, जग बसा भी न पाया ॥
गीत गाना बहुत चाहा, गीत गा भी न पाया ॥

निराशा-निशा में....

निराशा-निशा में किसी के हृदय की व्यथित कल्पना आज सो क्यों रही है
वही कल्पतरु हैं, वही साध वाले,
ये चातक वही हैं, वही मेघ काले।
उन्हीं के सुकोमल करों मे किसी की—
व्यथा-व्यंजना बीज बो क्यों रही है ?
निराशा-निशा में किसी के हृदय की, व्यथित कल्पना आज सो क्यों रही है

हुआ प्रातः कब का नही जान पाया,
पिके बोलती तुम, न पहिचान पाया।
तुम्हीं से तुम्हारा अपरिचित हुआ तो—
क्षमा-याचना, आज हो क्यों रही है ?
निराशा-निशा में किसी के हृदय की, व्यथित कल्पना आज सो क्यों रही है

हुआ सो हुआ, बीत भी तो गया है,
उसी में कोई गीत भी खो गया है।
किसी के सुखद स्वप्न की रूप-रेखा—
नयन-वेदना आज धो क्यों रही है ?
निराशा-निशा में किसी के हृदयकी, व्यथित कल्पना आज सो क्यों रही है

जो बीता, उसे याद करना भला क्या ?
रुँधे कंठ से, आह भरना भला क्या ?
सिहरते किसी के, मृदुल गान लेकर—
वृथा खाक में प्राण खो क्यों रही है ?
निराशा-निशा में किसी के हृदय की, व्यथित कल्पना आज सो क्यों रही है

जिसके मिलने में....

जिसके मिलने में खुशी हुई तुमको,
उसके वियोग में दुःख भी तो होगा ।।

मैं आज किसी के अलसित नयनों में,
आनन्द-उदधि को हँसते देख रहा ।
मैं आज किसी के दर्द भरे दिल में,
सपनों के चित्र उतरते देख रहा ।
क्या कारण ? नहीं समझ में आता है,
क्यों इतनी नादानी की बात हुई ?
सब कुछ तो हुआ कि जो स्वाभाविक था,
पर शुष्क प्रणय में क्यों बरसात हुई ?

निर्मित जो हुआ कि महल किसी सुधि का,
निश्चित उसका विनाश भी तो होगा ।। जिसके मिलने में

होते प्रभात, खिल पड़ा सूर्य नभ में,
रजनी का तम भी स्वत्व-विहीन हुआ ।
दीखा पूनम का चाँद अगर पल में,
पड़वा को वह भी प्रतिभा-क्षीण हुआ ।
बहते मारुत के झोंके यदि मृदुतर,
तो लू के झँझावात न कम होते ।
मुस्काने से मधुऋतु के, कानन में,
पतझड़-आशंका-रहित न वन होते ।

यदि जीवन का विश्वास अमर कुछ है,
मुर्दा मानव का तन भी तो होगा ।। जिसके मिलने मे....

त्रुटियो से मुक्त न मानस को समझो,
भ्रम ही सबके आधारों का बल है ।
कमियाँ कितनी विधि की रचनाओं में,
सबको पहिचाना जाना मुश्किल है ।
जिसको समझा जाता सुख का साधन,
जिसको प्राणों का प्राण समझ लेते ।
जिसकी गहरी छाया मे डूबे मन,
जीवन भर गति का नाम नही लेते ।
जिसमे इतने होगए प्रभावित हो,
उसका न प्यार पल भर भी तो होगा ।। जिसके मिलने मे

ऐसा लगता ये तरल तरगें ही,
जीवन की नाव डुबा कर छोड़ेंगी ।
युग-युग से संचित मन की साधों में,
निश्चय ही आग लगाकर छोड़ेंगी ।
मै डरता बहुत, किन्तु चलता जाता,
चलना ही मेरे दिल की कमजोरी ।
इससे मैं कभी नही बचने पाया,
मैं थका—न मंजिल किन्तु हुई थोड़ी ।
अतएव संकटों की गोदी प्रिय है,
जिसमें कि सत्य-दर्शन भी तो होगा ।। जिसके मिलने में

मैने गीतों को गाया न इसलिए,

तुम भी इसका कुछ अर्थ गलत समझो।

मैंने यह दीप जलाया न इसलिए,

तुमही कीमत न पतँगे की समझो।

माना–इनसे तुमने कुछ पाया है,

माना तुमसे कुछ रूप सजा इनका।

माना मुझसे दुनियाँ ललचाई है,

माना–मुझमें कुछ ध्यान हुआ जग का।

फिर भी सयम से धैर्य अगर बाँधा,

कम वेग न धड़कन का भी तो होगा॥

जिसके मिलने में खुशी हुई तुमको,

उसके वियोग में दुःख भी तो होगा॥

परिवर्तन

रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ।
रोज आकर्षण नए मैं देखता हूँ॥

(१)

यह चला मानव, चली उसकी जवानी।
यह बना इतिहास, नूतन सी कहानी।
यह हुआ उत्थान रवि का, औ' पतन भी,
यह बही सरिता-रुकी उसकी रवानी।
यह जगत का क्रम, नई काया बदलती-
रोज आमन्त्रण नए मैं देखता हूँ।
रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ॥

(२)

आज धरती पर उगे, अंकुर नए से,
और कल ही वक्ष पर, तूफान ढरते।
यह प्रकृति का है नियम, अक्षुण्ण-अविचल,
कौन है-इस तथ्य को जो झूठ कहदे ?
मेघ की बदली, गरजती भी बरसती-

रोज अन्वेषण नए मैं देखता हूँ।
रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ॥

(३)

क्या किसी की जिन्दगी, यकसाँ चली है ?
श्वास की नौका, कभी बहकर बची है ?
यदि चढा यौवन, पडा उस पर कफन भी,
एक शाश्वत सत्य, ससृति का छली है।
जो भँवर मे पड गया, वह थम न पाया--
रोज धरती औ' गगन मैं देखता हूँ।
रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ।।

(४)

बात मानव की नही, हैवान की भी।
आह-आँसू की नही, अभिमान की भी।
आँख की पुतली, न रुकती एक क्षण को
जान जाती 'शान्ति' की 'तूफान' की भी।
खेलते कितने खिलौने, एक बल पर
रोज गत-नर्तन नए मैं देखता हूँ।
रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ।।

(५)

एक देखा ढेल, सूखी मृत्तिका का।
वह पडा करता रहा, कुछ काल फाँका।
एक दिन आया, हरित परिधान पहिने,
कह उठा—"मेरा किसी ने रूप आँका ?"
एक अन्तर्द्वन्द ऐसा ही चला है—
रोज जड-चेतन नए मैं देखता हूँ।
रोज परिवर्तन नए मैं देखता हूँ।।

विदा-वेला

तुम बिछुड़ गए, न दूर हो सके कहीं ।।

शरीर का तो बाह्य-स्नेह मोम सा सदा ।
सहेगा वह भला कभी क्या दुःख-आपदा ?
परन्तु आत्म-प्रेम, वह सुदृढ़-दिवाल है,
ढहा सके जिसे कोई भी क्या मजाल है ?
वही पुकारता है बार-बार चुप नहीं ।। तुम..

भरा था प्रेम-सिन्धु, बनके घन उमड़ पडा ।
बिछोह-दुःख आज मेघ बन बरस पड़ा ।
बुझी न प्यास, चातकों की आश मिट उठी ।
पता न था, कि क्यों वियोग-वन्हि जल उठी ।
विहंग ! तुम उड़े कहाँ ? वसन्त भी नहीं !! तुम.......

कि--वेदना उठी महान् अन्तराल में ।
ये कल्पना-मृगी फँसी ममत्व-जाल में ।
कि शर, विरह-बधिक तेरा लगा निशान से ।
हैं सुन रहे समग्र चीत्कार कान से ।
दुःखी प्रणय, किसी की रोक मानता नहीं !! तुम ...

कि आँधियाँ उठें, महान् बिजलियाँ गिरे ।
समुद्र तिलमिलाए, श्रृंग-चोटियाँ फिरें ।
अगर गगन से भी, धरा की बातचीत हो ।
दिनेश शांति-प्रिय बने, मयंक भीत हो ।
परन्तु फिर भी विस्मृति तेरी सरल नहीं !! तुम ... ..

छूटी नभ से ज्योति....

छूटी नभ से ज्योति धरा पर, तमसाकार अभी बाकी है ।।

(१)

अभी न अल्हड़पन निकला है, शेष सभी बचपन की बातें ।
अभी-अभी ही तो आया है प्यार, कि ये मस्ती की रातें ।
अभी स्वच्छ-निश्छल मानस का आसन, कोई भी पधराए ।
अभी यहाँ मधुमास, याद में नहीं, कि सावन की बरसातें ।
अभी एक चिनगारी ने ही, तो प्रवेश पाया अन्तर में—
ऐसे कितने ही अँगारों का, शृंगार अभी बाकी है ।। छूटी .. ...

(२)

कितना विस्तृत है वसुधा का आँचल, जिस पर ज्योति बिछेगी ?
कितना है सौभाग्य धूल का, पल-पल जिसकी बात सुनेगी ?
एक जरा से ही छींटे ने, रंग डाली जीवन की चूनरि ।
कितना है गौरव अम्बर के श्रम का, जिसकी राह सजेगी ?
स्वागत है नभ की पूजा का, व्याकुल धरती की छाती पर—
किन्तु इसी के पूर्व सृष्टि की, गहरी धार अभी बाकी है ।। छूटी ... ..

(३)

यह न समझना—सभी सरलता से ही, काम निकल जाएगा ।
यह न समझना—एकाकी बल से, कि किनारा मिल जाएगा ।
टकराएँगीं लहरें, कितने तूफानों के वेग बढ़ेंगे ?
कभी प्रगति का यान, भँवर में फँसकर के थम भी जाएगा ।
केवल छोटी रश्मि ! घने इस अन्धकार से मत टकराओ—
तुम्हें नहीं मालूम, प्रणय की भीषण हार अभी बाकी है ।
छूटी नभ से ज्योति धरा पर, तमसाकार अभी बाकी है ।।

टाइपिस्ट

कि चट-चट चटा-चट, विकट छटपटाहट,
सदा प्रस्फुटित जिसके प्राणों की आहट !! कि चट-चट चटा चट...

इधर फायलों का बड़ा ढेर है औ, उधर भी नही कुछ कमी कागजों की।
इधर हैं पड़ीं कुर्सियाँ आडी-तिरछी, खड़ी तो उधर सैन्य भी आर्डरों की।
खुली एक खिडकी हवा-रोशनी को, उधर फर्श को सुधिनहीं गद्दियों की।
सजा कार्यालय घड़ी घन्टियों से, कलेन्डर टँगे, टोकरी रद्दियों की।
कि चश्मा चढाए सुबह से लगा है,
नही याद है शाम आएगी कब तक ?? कि चट-चट चटा-चट

कोई पास से घिसटती चप्पले ले गुजरता, पै उसको नही ज्ञात होता।
कोई चरमराते हुए बूट लेकर मचकता, न तिरछा कही गात होता।
कोई पूछता कुछ, तो हिल शीश जाता, कि स्टूल पर बैठ सन्यास होता।
कि आँखे लगी अक्षरों-कागजों पर, नही व्यर्थ में एक भी श्वास होता।
कि कितने अनूठे रहस्यों से लिपटा,
नहीं कुछ सुलझने की है राह अब तक !! कि चट-चट चटा-चट

हस्थी के जंजाल में प्राण उलझे, कि मस्तिष्क में अर्थ की उलझने हैं।
कभी सोचता बात परिवार की तो, कभी सामने नौकरी-झिड़कने हैं।
नही है समय, वह विवेचन करे कुछ, विषमताएँ प्रत्येक पल सिर धुने हैं।
कि सन्नद्ध है प्राण देने को अपने, विकट विश्व ने जाल ऐसे बुने हैं।

कि फटती पतंगों सा अब बह चला है,
नही है पता नाव डूबेगी चट-पट !! कि चट-चट चटा–चट . ...

घिसे पोरुवा हैं अँगुलियों के कितने, कि कार्बनकी स्याही लगीहाथ मे है।
सुधारा अगर उसके-जें कलों को, तो उसका नमूना लगा साथ मे है।
कभी वक्त पर होता नाराज भी वह, कभीहोता खुश बात की बात में है।
सदा स्वप्न सी जिन्दगी बीतती है, नहीं भेद उसको कि दिन-रात में है।

कि दर्जा समझता क्लर्की का ऊँचा,
नहीं किन्तु, मिटती जमाने की सटपट !! कि चट-चट चटा–चट . ....

हुई शाम को पाँचबजनेपै छुट्टी, तो आफिस से ले सायकिल घरकोनिकले।
सड़क पर दिखाई दी तितलीअनेकों, नहीं इतनीकुब्बतकि दिलउनपैमचले।
करें जब्त भी कैसे आकर्षणों को, गली नाकने–भाँकने राह गुजरे।
मनुज है, मनुज-मन कीकमजोरियाँ है, नहीं याद रहते हैं आदर्श सुधरे।

कि बजते इसी भाँति हैं रात के नौ,
नहीं कुछ जरूरी सिनेमा कि नाटक !! कि चट-चट चटा-चट........

मिलें तीस दिन वर्ष में छुट्टियों के, नहींफिरभी निश्चितहैअधिकार उनका।
बढ़ा काम यदि उनके कार्यालयों में, तो समझोहुआ खत्म रविवार उनका।
नही दर्द उनका, नहीं सौख्य उनका, न अनुभूति उनकी, न त्यौहार उनका।
हृदयहीन पाषाणवत् समझे जाते, कि सब देखते यों ही संसार उनका।

विशद् दृष्टिकोणों का आदर्श ये है,
पिसा जारहा आज मानव हुआ गत !! कि चट-चट चटा-चट ....

हृदय धड़कनों से मिला चलरहाहै,कि गति कार्य करतीमशीनोसीहर दम ।
नही नाम विश्राम का लिख सका,जब विधातानेविरचाथा इसदीनका गम ।
कि वह कागजी-कल्पनाओं के घोड़ों पै, उड़ता रहा,उसका टूटा भी है दम ।
हुई व्यर्थ'तदवीर'की शक्तियाँ,पर हुआजोरकिंचित न 'तकदीर' का कम ।
सदा मौन सा छा रहा हर दिशा में,
नही रोक पाई पगों की थकावट !! कि चट-चट चटा-चट ....

मशालें जली,जलके बुझ भी चुकी हैं,तड़पती हुई बिजलियाँ गिर चुकी हैं ।
अभी देखते-देखते ही अनेकों, बढ़ी हस्तियाँ, और मिट भी चुकी हैं ।
किसी ने घड़ी दो घड़ी दम लिया है,किसी की,सुबह शाममें ढल चुकी हैं ।
कि देखा सभी इसकी इन पुतलियों ने मगरआजविश्वास से हट चुकी हैं ।
ये थोथे सभी संस्कृति-तर्क–दर्शन,
नहीं मिट सकी जो उदरकीअदावट ।
कि चट-चट चटा-चट, विकट छटपटाहट,
सदा प्रस्फुटित जिसके प्राणों की आहट ।।
कि चट-चट-चटा चट...........

मुझसे कहो न कुछ भी....

मुझसे कहो न कुछ भी, अब मैं गीत बनाना छोड़ चुका हूँ ।।

जब तक गीत लिखा करता था, दुनियाँ आती थी-जाती थी ।
अपना मोहक प्रेम-भरा प्याला, देती थी मुस्कातीं थी ।
पर मेरी राहें सूनी, पद-चिन्ह न जाने कहाँ छिपे हैं,
कहाँ गए वे, मेरी क्षमता पर निद्रा न जिन्हें आती थी ?
इन उन्मद आँखों मे अब, निश्वास भरा, विश्वास नहीं है–
दूर हटो स्नेही अब मैं, मृदु पीर बसाना छोड़ चुका हूँ ।
मुझसे कहो न कुछ भी, अब मैं गीत बनाना छोड़ चुका हूँ ।।

संसृति के क्रम में होता, उत्थान किसीका, पतन किसी का ।
हर मंजिल पर, डगर-डगर पर, हास्य किसी का, रुदन किसी का ।
पर यह हृदय व्यर्थ दुनियाबी, जंजीरों ने बाँध न पाया,
जब स्वतन्त्र हूँ, फिर कैसे मुझ पर चल सकता जोर किसी का ?
तुम जाओ–अपनी मोहकता की गठरी का भेद न खोलो–
मैं कजरारी बदली पर, सुधि सा मंडराना छोड़ चुका हूँ ।
मुझसे कहो न कुछ भी, अब मैं गीत बनाना छोड़ चुका हूँ ।

कोई कहता–मुझको ही, मेरे प्रिय पात्र नही भाते हैं ।
कोई कह जाता–कि तुम्हारे, प्राण किसी को ललचाते हैं ।
मैं इतना निर्मोही हूँ, हावी हूँ, जितना समझ लिया हूँ ?
मैं क्या कहूँ-कि कहने वाले ही तो सब कुछ कह जाते हैं ।
बस 'अथ' की 'इति' हुई प्रणय की बागडोर अब नहीं सँभलती ।
तुम पर क्या-मैं निखिल विश्व पर, पुष्प चढ़ाना छोड़ चुका हूँ ।
मुझसे कहो न कुछ भी, अब मैं गीत बनाना छोड़ चुका हूँ ।।

जिन्दगी

मै जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ ॥

[१]

श्वास की गठरी, जिसे विधि ने, सृजन का अँग माना ।
क्षिति, पवन, जल, आग, अम्बर का, दिया अतुलित खजाना ।
हो गया निर्माण आत्मा का, नई काया चमकती,
और दो क्षण दे दिए सुख के, कि मन जब तिलमिलाना ।
मृत्तिका का ढेर, जिसका रूप-परिवर्तन हुआ है—
उस सजे सौन्दर्य की, प्रतिमूर्ति को मैं देखता हूँ ।
मैं जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ ॥

[२]

इस तरह साँचे ढले कितने, नही कुछ भी ठिकाना ?
चल दिया यों कारवाँ जग का, न दो क्षण चैन माना ।
किन्तु मरुथल ने, करोड़ों हाथ से रोका उसे था,
पर प्रगति का वह चरण, रुकता भला कैसे दिवाना ?
दूर की मन्जिल, न कुछ तकदीर का भी जोर कम है—
'कर्म' मे ज्यादा बली, 'तकदीर' को मै देखता हूँ ।
मैं जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ ॥

[३]

वह प्रथम ऊषा किरण का, रूप झिलमिल खो चुका है ।
उस कनक सी देह पर, हावी कि महफिल हो चुका है ।
उड़ गईं रंगीनियाँ—यौवन, कि पतझड़ खुरखुराया,
उन सुनहले स्वप्न के नक्शों पै, हर दिल रो चुका है ।

अब न आगे उस जमाने की, सुनाना तुम कहानी—
आँख के हर एक पर्दे पर, लिखी को देखता हूँ।
मैं जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ।।

[४]

आज सूखा ढेल, फिर सूखा हुआ, देता दिखाई।
आज आशा पर फिरा पानी, निराशा की सगाई।
आज—वह ढाँचा, कि जिस पर मिट चुकी कितनी अदाएँ,
हो रहा जर्जर-विकम्पित, भूल सारी याद आई।
किन्तु—इतने पर न सोचे, मैं उसे कैसे सुझाऊँ ?
बात छोटी है मगर, संजीदगी को देखता हूँ।
मैं जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ।।

[५]

यह वृहत आकाश तारे, मेघदल कब टिक सके हैं ?
यह सजी धरती दिवा-निशि के, न मन थिर रह सके हैं।
चाँद औ' सूरज न जाने, भ्रमित-मन कब तक फिरेंगे ?
ये पवन की स्निग्धता, तूफान के भय कब रुके हैं ?
है सुनिश्चित--उस 'कफन का घेर', जब सबके लिए ही—
कब्र में रक्खी हुई, हर चीज को मैं देखता हूँ।
मैं जरूरत से अधिक, इस जिन्दगी को देखता हूँ।।